

शुंगाररसभंडन अंतर्गत

“ ह्य न्न ली ल्य ”

प्रकरण : २

(१) सदा चन्द्रावल्या कुसुमसयनीयाय रचितुम्
सहासं प्रोक्ताः स्वप्रणयिगृह्यचर्मः प्रमुदिताः ।

निकुजेवन्वोच्यं कृतविविधतल्पेषु सरसा
कथां स्वस्वामिन्या
सपदि कथयन्ति प्रियतमाम् ॥

श्री यद्रावलीलने दुर्धते अपनी प्रेमासपद
सपीके हँसकर यह आशा हीनी, तुम निकुंजमे
पुष्पशय्या आदि रचो। तप ये अंतरंग सपनी
निकुंजमे गंध और नाना प्रकाशकी पुष्पशय्या
आदि साभशी वहां रचिके, जण व्यवसर मिथेया
तप दुर्धपूवक अपनी स्वाभिनील श्रीयद्रावलील-
की सरस शुंगाररसप्रधान अर्थात् प्रियकथा
आपुसमे कहे हैं। रसमय कथाके गोपीनीयत्वके
कारण धरमे नहीं परंतु निकुंजमे कहे हैं ये
सण गोपी परकीया अलिमाननी श्रुतिरूपा हैं
धनके युधिष्वरी श्रीयन्द्रावलील हैं। वेदकी श्रुति
ही गोपीरूप लक्ष हैं यह सिद्धांत है। विशेष
आगे कहेगे।

(२) अथेव सुकृतोदयं रिन्ति श्रीमती यद्रा-
वलील विहारकी धियाते, अनेक सपिनको संग
केके अपने घरते वृंदावनको पधारी। वह दिवस
अतिमनोहर है। अणुंड आनंदयुक्त आधिदैविक
वह समय है अर्थात् अलौकिक है। यहां वेधम्
नाम प्रह्लादको नहीं है। क्योंकि वह तो लौकिक

प्रकृतियन्य पदार्थ बनायवेवारी है। प्रह्लादको भी
बनायवेवारी लगवान है। अर्थात् प्रभुने अपनी
लीलाके दिने अलौकिक सण सृष्टि बनाई है। जैसे
ही काल है अलौकिक प्रगट क्रिया है, याने
लगवल्लीला क्षालाती है अर्थात् निय है यह

सिद्ध लये। लगवल्लीलाकाल लौकिक कालते
लिन्न है। अलौकिक काल लक्षतनकी सुकृतिके उदयसे
ज-यो है। सुकृति याने ने युगल स्वरूपको सुण होइ
जोसी सुंदर कृति ने सेवा सोई यहां सुकृति है।
यासो प्रभुनकी कृपाको उदय होत है। यासो उन
अंतरंग लक्षतनको अफनायके प्रभु उनके संग
निय विहार करत है। अतः जेव लक्षत व सभं
ने ने सेवा करे है तद्वत्सार ही समय कहांवते
है। कहां समय है ? तो ज्यथापनको समय है। यह
नहीं कहे ने चार नये हैं। यही क्षाली
अलौकिकता है। और ऋतु है लक्षतने मनोरथानु-
ह्वल रहे है। अतः काल अलौकिक है। और यहां
लीलामे तो अभिल भंगल है, लक्षतने मनोरथ
असंभ्य होत है, ता ते अनेक कहे हैं अखिल संसल
सदा मनमौलाविते मनोरथ सतः निमिते ॥ याते
कहे ने संपूर्ण सुगलरूप लक्षतने मनोरथ-
सें ही वह काल ज-यो है। (लौकिक सण, कृत्तिका
आदिसो नहि) अतज्येव लक्षत हैरेक सभयमे
अपने मनोरथानुसार प्रत्येक ऋतुकी लीला करि
सके है, लक्षत को समय नवीन नवीन मनोरथ-
उत्सवादिहमने पीते है, अन्य आलाप, अन्य
धान, अन्य कृतिको रचय नहीं करे है।

(३) समुद्र प्रथित मालती इति है सपि, श्री
द्रावलील को अनिर्वचनीय केशपाश धारण
करती शोभित लक्ष-वह केशपास उसेा है ? सो
है, ने मलिन न होय लय और उपर हीपते
या रीतिते गृथे लये ने मालती, डेवडे,
यमेली, गुलाब, सेवती, आदि, उनते निकसी
लीने अतःआनंद देववारी सुगंध, ताते मत्
भये योशानके जुंड लभं शुंज रहे है, और वह
केशपाश होदर-अनंत लाननको पोषक है, तथा
कस्तुरी आदि विचित्र नाना रंगवादी है, और
कामदेवके हुं भद्रको हर करवेवारी है, लकी
मन्दरताके देपिके काम अपनी सुंदरताको
प्रल-लय है।

(४) इयामेन्दोः इति है सपि, श्याम ने
अनन्दके अनुरूप ताको स्वरूप श्री यन्द्रावलीलको
मेमान् है, कारण यह है कि पुष्पनके मियते
हस्तनभके किरण या केशपाशको कदापि
नहीं चम्के है। या उन्पेक्षाको आशय यह है कि तारा
वहसतिकी सी है। वह लक्षमीक अंश है और
शुंगाररसप्रधान है। अन्द्रमा नारायणको अंश
है और त्रद-ली शुंगाररसप्रधान है अतज्येव
अन्द्रमाने ताराको अक्षय क्रियो, स्वकीयाने विशेष
रचनकी होयवहै, और वाको हुं निज पतिमे
रस-न्यून होय है या कारणते रसरूप जेका
तारा और अन्द्रमाको लये-जैसेही यहां रसके
परिधीय श्री यन्द्रावलील परकीया रूप प्रगट
है अतज्येव होनानको अनुरूप होयवेते तारा
अन्द्रमाकी उपेक्षा करी है।

(५) कुसुम इति है सर, य-हन, कस्तुरीने
विशित-रूप लये है जैसे यन्द्रावलीलको
केशपाश नहीं है किन्तु कामदेवको विधिने तैयार
क्रिये जैसे तिरकस (शरभायु) है। वह केशपाश
कामको ज्वीक है।

(६) न घमिमलो इति है सपि, प्रियाल्लोके
यह जूरो (केशपाश) वही है किन्तु सुन्दरतारूप
जलको वरसायवेवारी मेधनको समूह है और
जूरेमे नाना रंगको रूप नहीं गृथ रहे है
किन्तु अन्द्रधनुष ल सुरपतिके धनुषकी प्रत्य-आ-
हारी-डे ही परिष्कारविशेष है] ये मोतिनके
अच्छा नहीं लटक रहे है किन्तु परम शोभारूप
जलके जूह है और यह केशरकी त्रिकार लक्ष्मी
(सिद्धरने सेना) पुर्यां (थे ते) नहीं है किन्तु
विद्युत अमक रही है। (अपभ्रुति-सहित उत्प्रेक्षा
अवधार है।)

(७) निसर्ग सुन्दरो इति है सपि, स्वाभाविक
सुंदर यह केशपाश, महीन (पारीक) विचित्र वस्तु-
ते आच्छादित है सो जैसे विभक्तक्षय सोईत है
जैसे श्री यन्द्रावलीके उदयमे निरुद्ध श्रीकृष्ण
अन्द्रके प्रति प्रेम।

(८) मत्सर्मावित इति है अली, मांग के
पीयमे मेने ने सुंदर सिद्धररेणा बनाई है
वाके उपर युक्तावलीके धारण करती आप-
शोभाको प्राप्त हो रही है।

(९) नसा सिद्धरे इति ॥ है सपि, मोतिनने
युक्त वह सिद्धरकी मांग नहीं है किन्तु सौलाभ्य-
रूप ससुद्रकी अंग सद्धित (दीख सद्धित) पूर
प्रवाह है। अर्थात् प्रियाल्लोके स्वरूप सौलाभ्यको
ससुद्र है और सिद्धरकी मांग वारो पूर-है-और
युक्तावली अंग (दीव) है।

(१०) वदन सुषाकरिति ॥ है सपि, ये
मांगके उपर मोतिनकी लरि नहि है। सुषारूप
अन्द्रमाकी किरण होलि रही है सो यह किरणने
यह अद्भुत ग्यात है कि उडसमूह रूप
अधकारके ये निरंतर प्रकाशित कर रही है।

यन्म्रात्री किरणनके आगे अंधकार रहे नाहिके यहाँ सुभ ने दे सो यन्-रहे सुप्रतावली किरण्य है तो हु केशसमूह रूप अंधकार प्रकाश रह्यो है, यह आश्चर्य है. यहाँ देशनको अंधकार अतायपते' उनरी सघन वीला सूचित है.

(११) सुस्निग्धा मलेति । हे तनुषी, नील कमलसे नेत्रवारी श्री यन्-द्रावली ल अपने सुभके दोनों ओर अलकावलि धारण करती सोभित भई है अलकावलि केशी है जो सविच्छन्न [यिकशवाणी] निर्मल, युधरवारी (वांकडिया वाणवाणी) अति श्याम है. अतमेव मन हरण करवेवारी है.

(१२) इशवहास इति । हे राधा लीके सणि, हे कमलनयनी, तू हे भू, यह केशी वीरुने अद्भुत भात है, यह [अलौकिक] अवलोकन बौरानरी पंक्ति अपने स्वाभाविक अंकारके [अभरने स्वरे] लुकिने निश्चल होय के, श्री यन्-द्रवलीके सुभरूप कमलके वावप्यरूप मधुमकर-मधके [ने उनके मं ह सुसकयानते' टपक रह्यो है ताके] अडे हर्षते' मत्त डोयके भी निरंतर पान करे है. और तो हु मलरहित ह. भाव यह है कि स्वाभाविक अंकारनको लूल अनो और हिर निश्चल रहनेना तथा मत्त भये हु निरंतर पान करने और मधुपान (मधपान) करिके हु निर्हाय रहनेना, यह सभ अद्भुत भाते' ही है (विरोधाभास अलंकार)

श्री यन्-द्रावलीके सुभ मं ह सुसकयानते' परम सुंकर है. तथा दोनों ओर अलकावलि सोभित होय रही है. यह भात स्थापित होय है

(१३) नैतन्मुलम इति । प्रिया लीके यह सुभ नहीं है किन्तु निष्कलक यन्-द्रमा ही है. और यह सु-हर अलकावलि नहीं है किन्तु आपके स्वरूपमे' सुभ भये सणिजनके नेत्रनके तारा (श्याम पतली)

हे प्रयोजन यह है कि आपकी सुभयं द्र ओसे सुंकर है कि सणिने नेत्र धकटक होय निरंतर निरन्धे ही करे है [अद्भुति अलंकार सौंदर्य-तिशय अंग है.]

(१४) सकमल यमुना इति । कमल भंगे भिल रहे है ओसी ने यमुना ताकी लहरनेते' उत्पन्न भई ने शीतल मं ह सुग धयुक्ता पवन, ता पवनने' ये अलक डोल रही है, सो भानो केटि क-दंर्षी शोभाके तिरस्कार कर रही है कि तुम या सुभके आगे कछु नहि हो [अद्भुति और उत्प्रेक्षा अलंकार] केटि क-दंर्षते' अधिक सु-हर प्रिया लीके सुभ है, यह व्यंग है.

(१५) विद्याले माले इति । हे सणि, विद्याल लालपे' आपने तिलक धारण क्रिये है. यह तिलक अर्धयन्-द्राकार सुवर्णते' बन्यो है, और हीरा-मखिनते' अटित है. हेरि यारों ओर [प्रान्त भागमे] सुहायहार मोती लटकि रहे है. यह तिलक भांगके नीचे, ताके समीप ही है. अतमेव अलक वापे' गिधुर रही है. यह तिलकके मल-भाषामे' गेदी कइत है. वाके नीचे कस्तुरीकी आड करी है, याके नीचे सिंहरकी गेदी है सो हीपककी शिभाके समान शोभायमान है, या प्रकार दोनों बोहूनेके भीयमे' सु-हर रीतियों धारण करती आप सोभित भई है.

(१६) रेजे मुक्तामयो बिन्दु इति । कस्तुरीकी आडके भीयमे' मोतिनकी गेदी ओसी सोभित भई है कि भानो यज्ञायमान मेघमालाके भीयमे' निर्मल यन्-द्रमा अवल रह्यो है. अर्थात् यज्ञायमान भादलाके भीयमे' निर्मल यन्-द्रमा नेसी कस्तुरीकी आडके भीयमे' मुक्ताकवली गेदी सोहंत है. [अभ्युत्पन्न अलंकार] अथवा (उत्प्रेक्षा अलंकार है)

(१७) न भ्र लता इति कमल सभान नेत्रवारी यह प्रिया लीके भ्रोंह नहीं है और ये नेत्र नहीं

हे और ये नेत्रन के विलास नहीं है परंतु गाल-अवधारणे' लत्यो ने कामदेव ताके धनुष्य आधु-रूप-धन लूट लीने है, लूटके पीछे लूट करे है अर्थात्-आलपनमे' ही कामदेव लूट करे है. मनुष्यके शोभाके-कहा वषु'न कउ? कामदेवके धनुष्य नेसी भ्रोंह है और आधु नेसे आपके नेत्रकटास है.

(१८) त्रिभुवन जयमय इति हे सणि, त्रिवेदीके लूटके भयो ने अभिमान, ताते' यन्-द्रावलीके भ्रोंह (भामर) मध्यमेते' वड हो रही है. नेसे कोर्ष विजयी वीर विजय प्राप्त करिके-विजयमहते' धतसत है तेसे धनकी भ्रोंह अकर रही है. अण मधुसूदन कृष्णो हु' शीघ्र लूटपेके सिंघे व्यग्रशी होय रही है अतमेव अचल भई है. नणतक प्रसिद्ध शूर युधुपके नहि उत-सो-तण तक वह विजयकी पूर्वाता नहीं है, तासां-वासों हृदयेमे' व्यथता और अचलता रही आये है अर्थात् वाकी आंकी और अचल भ्रोंह है सो-निबुधनको मोहित करिके श्रीकृष्णके मोहित करवेकी चेष्टा करि रही है. आहो सौंदर्य! आप अद्वितीय सौ-न्दर्यशालिनी हैं.

(१९) जातं मया सखि इति । हे सणि मैंने यह भात पूर्व (प्रथम) ही जन लीनी है कि प्रिया लीके हृदयमे' श्रीकृष्णविषयक नवीन प्रपूर-पूर्ण-यन्-द्रके उदय होयगा या अनुमानकी आपके यह है कि वा यन्-द्रमाके कामल किरणनकी मोहकर अरुणुताके उनके दोनों नेत्रोंमे' प्रसरित हो रही है याते' मैं अनुमान किया कि-जण यन्-द्रमा उगे है तम पहेले कछु आकाशमे' अरुणुता भयो करे है. तात्पर्य यह है कि नयन-नेमे' कछु ललाटके वीर प्रगट होय रह्यो है (अनुमान अलंकार) नेत्रनकी अरुणुता जतावत है कि आपके (हृदयमे' कृष्णविषयक राग-प्रेम-निवास कर रह्यो है.

(२०) यथात्र विषया इति । ने आसविधि के द्वारा कामदेव लत्यो भय है ता विधिके आण नेत्ररूप आचार्य, या अणुदीयनाके दोनों काननमे' धीरे धीरे उपदेश कर रहे है, जण केहि युधु शुद्ध उपदेश करे तण काननमे' करे है, और धीरेसे करे है. तात्पर्य यह है कि आपके नेत्र कृष्णपर्यंत निशाण अनियारे है.

ॐ पर तू मो मेरा एक ॐ
ले. श्री श्यामा : निर्मलकुमारां देवो

मुझे तुझे मिलना ही है,
पर अपार गुट लगे हैं मेरे प्राणोंपर
पर तू भी मेरा एक हृदयसंपुट ही है ।

तुझे भेटना ही है,
पर अंतत आवरण है मेरे सुकन संघान पर
पर तू भी मेरा एक वरण आवरण ही है ।

तुझे घूमना ही है,
पर अन्ततम अंतरपट है मेरे कारण करारी पर
पर तू भी मेरा एक करण कारण ही है ।

तुझे निहारना ही है,
पर अपर घूँघट है मेरे मुल पर
पर तू भी मेरा एक घूँघटमुल ही है ।

तुझे कुछ घरना ही है,
पर अहांड अश्रुमोती बिलरते हैं मेरे तन पर
पर तू भी मेरा एक स्वाति मोती ही है ।

(२१) जगति जेतुम् इति । हे सधि ! श्री स्वाभिनीलके नेत्र तीन डोहनको लतवे खले, उनको दोनो डानने रेकि दीये तथ नेत्र कुंड होयके रस्ता छोडिके मानो कुभागो परे खल रहे हूँ याही कारण टेढे कटाक्ष यल रहे हूँ । जेसे कोर्ध मनुष्य कोर्ध आवश्यक कामको जदवी लय और वाको कोर्ध रोके तथ वह, जदवीके कारण मागो छोडिके कुभागो यलन लगे है, और रोकेवेवारेते टेढा पठ लय है, भाव कुंड है कि आपके नेत्र कानतक विशाल है और कटाक्ष तीक्ष्ण है ।

(२२) परिघायांजन इति । प्रियालके नेत्ररूप व्याध (शिकारी), काजर रूप रथाम जमको पहरिके, कटाक्षरूप गालुनते, कानरूपी शुक्रमे गेठे लये, कामरूप हरिजुके, भारवेको विचार कर रहे हूँ, कि भारे के न भारे; कारण छिपे लयेके मारने शरनको काम नहीं है तत्पर्यं यह है कि आपके नेत्र कर्ण पर्यंत विशाल है और काजरते लरे लये है; और तीक्ष्ण कटाक्षवारे है । तथा कान अति कामहीपक है । (रूपक अलंकार) ।

(२३) भ्रावण युगले इति । हे सधि ! आपके कर्णमे ताटकं (कर्णकुंडल) गहुत शोभाको प्राम लये, निश्चिन्न अमूल्य लोके भञ्जि और सुवर्णकी क्षितिमे विनने सूर्यको अंत दिथो है और सुंदर गजमुकुतानते शोभित होय रहे हूँ, और उनको मध्यम भाग मञ्जुमय नीलकमलकी पांशरीनते भरि रहे है, भाव यह है कि सुवर्णरजित कर्णकुंडले प्रान्तमे मंडलाकार मोती लग रहे है । फिर उनके भीतर मंडलरूपते नाना प्रकारके मञ्जु जडि रहे है । फिर जे मध्यभाग गाली है वामे नीलकमल पांशरी लरी है ।

(२४) न चरियं चवलेति । हे सधि ! प्रियालकी भ्रौं नहि है, किन्तु यंयल गाल

अवस्थामे लल्यो को कामदेवद्वय राज्य ताको धनुष्य है, और ये नेत्र नहीं है, कामके पुष्प-भाष्य है, और यह भ्रौंके अथवा नेत्रनके मटकन आदि नहीं है किन्तु कामदेवको सर्वस्व ही हरि दिथो है, तात्पर्यं यह है कि, भ्रौंके नेत्र, विवास ये सध कामके उद्दीपक है ।

(२५) स्वार्ता यदि इति । हे कमललोचन ! यदि जगतमे होय यन्द्रमा होय और उनको उपर होय सूर्य उगे तो, प्रियालके ताटकं प्रभा-युक्त दोनो कपोलनको उनते उपमा दीनी लय, अर्थात् आपके दोनो कपोल यंद्रमा सरिजे है और ताटकं सूर्य सरिजे है । (अभूतोपमा अलंकार)

(२६) नबकुंजुम इति । हे सधि ! भृगु-केसे नेत्रवारी श्रीप्रियालके दोनो कपोलनमे नवीन केशरयुक्त यंद्रनी रेभा ज्येष्ठी शोभित लर्ध, मानो परम शोभाही रेभाइपते प्रगट लर्ध है, यह रेभा कमलपत्राकार या भस्त्राकार है (उत्प्रेक्षा अलंकार)

(२७) शुकतिल कुसुम इति । हे भृगुलोचना ! तोताकी चोयं तथा तिलपुष्पके गवको हर करि वे वारी, अर्थात् आकारमे उनते हूँ श्रेष्ठ सुंदर नासिकामे, न गहुत हर, न निकट लटकते, यंयल मोतीकी नक्षत्रेसरको धारण करती शोभित लर्ध, (वेसरिके मोती होवायमान होय रह्यो है; सो परम शोभा देत है) ।

(२८) नासाय इति । हे सधि ! कमल समान नेत्रवारी प्रियालकी नासिकाके अत्रभागमे यह वेसर नहीं है किन्तु, अधिकताके कारण शोभाको प्रवाह मानो प्रगट होय रह्यो है (अपद्धति और उत्प्रेक्षा अलंकार)

(२९) जितविम्बेचेरति । विम्बकुंडलो जित-वेवारे, कामशास्त्रके परम गोप्य तत्पर्य अंधर, सुभद्रपुत्रकमलको मध्यभाग है, तामे गहुत गहनी (भात्री) रेणवे शोभित है, ता अंधर करिके श्रीप्रियाल शोभाको प्राप्त लर्ध है, (अंधर विम्बकुंडले हूँ अधिक अंधरु है, अंधु वामे सूर्य रेणवे है, जेसे कमलके मध्यभागमे तंतु होत है, और अंधर-सुंगाररसको सर्वस्वरूप है, क्यों कि अंधरामृतको पान रस-वर्धक है) ।

(३०) निसर्गरागात्मनोहरेति । स्वाभाविक अंधुलता जे लालार्ध तासें ही अति भनाहंर, फिर पानकी लकीरनते रंगी लये, तथा मंद सुसंयतनते उप-न लर्ध जे हंतकिरण तिनते लुपित, जेसे अंधर (नीशे के जोध) की सुंदरता अवलुनीय है ।

(३१) तनुतरमुभगाधरेति । हे सधि ! मृजको शोभित करिवेवारी लको अंग है ज्येष्ठी श्री यंद्र-वलिलके अंधरमे सूर्यभरेभा नहीं है किन्तु भागी (वाष्पीरूप लावण्यमृत ससुद्रके प्रवाहके अरुण है) अर्थात् आपके वचन अमृत समान मधुर है वचनरूपी अमृतको ससुद्र भीतर भरि रह्यो है ये अंधरमे लकीर नहीं है यह अमृतके स्रोतकी धारा है ।

(३२) अचिरानुलतावि इति । हंतपत्रिके हलते प्रियाल जण गिभुरीके तेजको स्थिर करिके धारण करत है, तम विनोद करिवेवारे श्रीकृष्णके मनको अपनो वश करि लिथे तामे कहा आश्चर्य है अर्थात् आपके दशन (हंत) की कान्ति गिभुरीकी सी यमक रही है ।

(३३) अपि प्रिय सक्तोति । हे प्रिय सधि ! पांयुलरसते रंगी लर्ध यह प्रियालकी हंतपत्रिका नहीं है किन्तु प्यारे श्रीकृष्णके प्रेमरूप रसतेरंगी

बथी रतिरसद्वय अमृतकी परंपरा प्रवाह है, (यहां स्नेह कला द्विजति यह श्रीमद्भागवतके वाक्योके अनुसंधान करनी) अत जेव जेसे अनिर्वचनीय अदोकि रसाभूतको श्री यंद्र-वलिल महा ज्योक्तानमे सुसमथमे श्री माधवको ही अर्पण करे है और ताको कौन अधिकारी होय सके ! रति रसजोके शिरोमञ्जु श्रीकृष्ण वा रसाभूतको पान करिके अत्यंत अनुरागको प्राप्त होवे है, या प्रकार प्रिया-प्रियालको परस्पर अनुराग प्रगट होय है ।

(३४) मुल्लचनेति । सुभयंद्रको किरणु है किंवा हीरासनी पत्रिका है अथवा अनारके (दाडभको) गीजु है या प्रकार प्रियालके हंतनमे निश्चय नहीं लये कि ये कहा है ! जण आप हंसिके कण्ठ गोलत है तण हारथके मिलवेते यंद्र किरणु समान गोलत है जण सल्ल गोलो तण हंत हीराने मल्लस होत है, जण त्वरसो गोलत है तण अनारके गीजु समान है जेव प्रतिकृष्ण अनेक शोभायुक्त आपकी हंतपत्रिका है यह प्रदीपके सहेह अलंकार है ।

(३५) आधिकयाधरेति । अधिप्राटके कारण कलायित अंधरामृत यादर निकस लय मानो याही शकते विधावा (वीला सृष्टिको) नेव अंधरामृतको रोकेवेके लिथे, मधु उन्नत आपके त्रिभुक्की (दोडी हडगली) रचना करी है तामे अंनगिहू धारण करती आप शोभित लर्ध (सासुद्रिके शास्त्रमे उगत त्रिभुक् सुलक्षण क्यो है) यहां उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

(३६) अरिमम्लेजो इति । या सुभयंद्रमे छतनो ही कलकपन है कि यह कामदेव, यंद्रमा और कमलको तिरस्कार करत है, या गालको प्रकाश करती श्रीप्रियालकी दोरीके अंजन (काज्या) की मीनदी सोहलत है, सकव रसिक जननके पूज्य कामदेव यंद्र और कमलको तिरस्कार करनी यह कलकपन

है यह तो निहाल बाध परंतु यामे आपकी स्तुतिही है जो आपकी मुण कामदेव यंद्र और कमलते हुं श्रेष्ठ सुंदर है (तासें व्याज स्तुति अलंकार है.)

(३७) किं वन्यामि इति । हे सभिन्ना, विष्णुकर्म ले श्याम गिहु है ताको वल्लभ मै कडा कद्रु ! रसिकप्रियैमि श्यामसुंदरको मनही मानो वहां विपक (बौदी) रह्यो है रचनात्मक भगवानको मन हु रचनात्मक है ताकी स्थिति रचनात्मक जैसे विष्णु पर योअ ही है शंगार रसको हु रनरूप श्याम है और गिहु श्याम है. श्रीकृष्ण शंगार अधिष्ठा है आप श्याम हैं आपको मन हु श्याम है सो यहां विष्णुकर्म अर्जन गिहु रूप सो मानो लाये है "भाषण" पदको प्रयोजन यह जो रसश्रेष्ठ लक्ष्मीं हु वेसो मन आपको नहीं लये-जैसे यंद्रवल्लभमे लये है आपको लक्ष्मीं हु उत्कंष सूचित लये.

(३८) किमयम् इति । हे सभि ! यह प्रियालको मुण निभल यंद्रमाहै - परंतु, यंद्रमामे लोरा (भारते) नही होय है यामे तो है [अलंकारलि लोरा है] अथवा यह मुण विकसित कमल भी नही होय सके है कारण कमलमे लोरा तो होय है यामे जिहरी नहीं है-यामे तो जिहरी है (हंतपक्रियेप विद्युत) अथवा यह अपूर्व अमृतको मेघ है कडा ? परंतु मेघमे अर्जन (पक्षी) नहीं होय है. यहां तो अर्जन है (नेनरूप अर्जन) या प्रभार है. सभि ! यह प्रियालको मुणकमल डोकके मनमे सदेह प्रगट नहीं करत है ?

प्रियालको मुण आनंदजनक होयवेसु यंद्रकी सहेयता पाई. अलंकारलि रूप प्रभार यंद्रकी होईवेते विकसित कमलकी सहेयता पाई और रसवर्षा करि वेते अमृत-मेघकी सहेयता पाई परंतु ओक-ओक भात नाहि मिलत है. ताते सदेह

प्रगट होत है (यहां सदेह अलंकार है और व्यतिरेक व्यंग है अर्थात् काइकुटि है.)

(३९) मुषांशुसारम् इति हे कमलक्षोभणी ! यंद्रमाके साररूप उत्तम तृप देके विधाताने गडे यत्नते प्रियालको मुण मनये है याही कारणते वा यंद्रमा म'अंभे' कारेव्य (कायाश) रह गछ है. जहां गडो होयके वाके आकारमे मलिनता दिभाई दिये करे है वा चिह्नको कंबक कडत हैं. प्रियालको मुणयंद्र अमृतके सार रूप है यह यंद्रमा अर्त्त सुंदर है कयोकि यंद्रमाको सार यहां आश गया. वह यंद्रमा नि-सार रह गया. (अपकृति अलंकार व्यंग)

(४०) स्वरेण भुवनेति हे सभि आपने (प्रियालने) अपने कंठ स्वरते तीनों लोक लुत दीने है यां भातको जतायवेवारी तीन रेभानको आप अपने कंठमे धारण करती शोभित भाई है. आपको कंठ स्वर-उत्पत्तिको असाधारण स्थान है अर्थात् सभ स्वर याही ते उत्पन्न भये है (तासें तीन रेभानते) यह ज्ञान करने छित्त नहीं है) आपको कंठ कामदेवको हुं गन द्र करे है अर्थात् सहज सुंदर है और मन्येशके लुजको लुण्य है अथवा मन्येशको लुण या कंडको लुण्य है. श्री प्रियालको परम सौभाग्य है कि श्री कृष्ण आपके कंठमे लुल धरत है यह तारपर्य है. कंठमे तीन रेभा नहीं है मानो तीन स्वर हैं या तीन श्रम है. श्री कृष्ण संग आप रासमे जान करे है या भातको ये तीन रेभा जतावे है. आपको कंठ यंनान्दिकते अलंकृत है. भाव यह है कि आपको कंठ स्वरको अधिष्ठा देवता है याहीते यंनान्दिकते पूजा होय रही है.

तारपर्य यह है कि आपको कंठ कणु (शंण) ते हु सुंदर है. वापे तीन रेभा निराजमान है

और गहुत मधुर है. आप रासमे भगवानके संग जान करती त्रिलोकीको लते हैं (उत्प्रेक्षा अलंकार)

(४१) मणिवर हीरक हाटकैति उत्तम मधि सुवर्ष हीरा धल्यादिकनते गन्या लये और जिनके प्रातमे (दिनारीमो) मोती पुरि रहे है जैसे कंठलुण्य आपके कंठमे जैसे शोभित लये मानो भावसमूह ही प्रगट होय रह्यो है तातपर्य यहां भाव शब्दते भगवतविषयक स्वाभिनीलके नाना प्रकारके मनोरथ, जैसे कि श्री कृष्ण मिले तो जैसे निहासक कद्रुगी धियादि. परंतु ये अर्त्त शुभ है उनको प्रकाश आप नहि करे है, गहु उत्कंठाके कारण अंतर्ग सभिन्ते कडवेको विचार करे है परंतु लज्जके कारण कंठ तक लावे हैं परंतु गह्वर प्रकाश नहि करे है यह भात कंठलुण्य जतावत है.

निर्दोष, अर्त्त तेजस्वी, अर्त्त विचित्र होवे-ते मनोरथको भूषणकी संगता दीनी है (उत्प्रेक्षा अलंकार).

(४२) उरसि विविचिंति (यह) श्रीप्रियाल वक्षस्थलमे हु विविध आभरणको गेज धारण करती और मोटे मोटे गुंजनको अर्त्त मनोह्वर प्रतिक्षण विचित्र शोभायुक्त, डारको धारण करती अर्त्त शोभित लभ.

जैसे संग्रामभूमिको युष्पादिकनते अलंकृत की लय है जैसे यह वक्षस्थलरूप रतिरज्जुभि आभूषनते अलंकृत है. अलंकारको (भार) अताये याते आपकी सुकुमारता प्रगट होय है यद्यपि आप आभरणको गेजको नही सहि सके हैं तथापि प्रभुको मिलवेके उत्साहते और याकी शोभा प्रलुनको अपर्ण करनी है या लावते, श्रम होय तोहु, धारण किये है अतमेव 'वहन्ता' या

शब्दको प्रयोग किये (वहु-भार वहने-लावने) मूलमे गुंजनको गज्ज अताये है. तातपर्य यह कि सभ अलंकारके भांडार गुंजनकी गोला धरत है. सो हीरादिकनके अक्षयकालते गुंज के डारकी शोभा छपि नहीं है किन्तु यह गुंजहार पृथक् ही शोभाको प्राप्त होय रह्यो है, याते सभ गुंजनकी उपेक्षा (गंभा धरेषां करता), गुंजहारमे आपकी अधिक् प्रीति है, कयोकि वह उपेक्षारको प्रिय लुण्य है.

(४३) मुगमवं पत्रेति करतुरीके पत्राकार चित्र जिनचे लिपि रहे है (करतुरीनां पत्र पांडां उपर वीतरवामां आभ्यां छे.) और डेसरकी कायते लुषित लये है जैसे श्री यंद्रवल्लिके दोनो कुय जैसे शोभित लये मानो कामदेवके दोनो भगत कलश छे.

(यहां कामको, प्रेमके परिणामरूप अलौकिक काम नदनो पापर मनुष्यनके काम कोधादि भगवदकीलाये नहि हैं. लीलायमे प्राकृत कोई वस्तु नहि है.)

(४४) कुचद्वयं नैव इति । प्रियालके ये दोनो कुच नहि है, कामदेवने अपने रसरूप धन होय स्थानमे छंको करि धरि राभ्यो है और ये द्युयुक्त है सो कुचनके उपर श्याम कलगी नहीं है किन्तु श्रीकृष्णकी भडोर छाप है जो श्रीकृष्णके गिना और कोई याको न दे सके. अर्थात् आपके कुच है सो साक्षात् मनमथमनथ श्रीकृष्णके सर्वस्व है.

(४५) ज्ञावणामत इति । हे सभिन्ना, मनजना श्री यंद्रवल्लील (तनकी हेइरूप लावण्य-भूत सरोवरमे) कुण रूप होय मनोह्वर अक्षयक (पक्षी) प्रीतिते परस्पर लीकते गेल रहे हैं. (आपको हेइ लावण्यतां पूषा है, गोला गोल कुय आपसमे वीडे लये है.)

(४६) रतिरस माव प्रथम इति । हे आलीओ, माने मेक कुच रतिस्थायीभाव इप हे और हसरो रस युंगार इप हे अत्योव कामदेवइप रावके सर्वस्व हे, याहीते' हेनो कुचनको अपने अचलते छिपावती आप शोभित लभ' नेसे डोह' रावके पदाथीको भडे यतसें छिपायेके राणे हे कुचनको हेप शीघ्र ही रति और युंगारको प्राहुभांय होय हे यह तात्पर्य हे.

(४७) काठिन्येन श्रीफलम् इति । आपके हेनो कुचनने कठिनतामे श्रीफलको छत बीनो हे अच्यत सरस होयवेसुं अभूत-सभूडको छत लियो हे और गोलाध' तथा सचिकनताये यकवाकको छत बीनो हे.

अर्थात् श्रीफलते' हु कठिन, सुधाते' हु सरस और यकवाकनते' हु अधिक गोवल्क सचिकन श्री प्रियालके कुच हे. (अतिरेक अलंकार)

(४८) सौन्दर्यं सोम इति । हे सभि, सुंदरताकी सीमा हे अर्थात् जिनते' सुंदर और डोह नहिं जेसे हेनो कुचकलशमको विधाताने' बनायेके, काहुकी दृष्टि न लग व्यय वा भयते', धनके उपर हो काचरिती गन्ही लगार्थ हे. याही कारण युच्च स्थाम हे.

हे कमललोचनी जेसे में मान' हुं. धन कुचन ते' अधिक सुंदर और नहिं हे. मानो ये सुन्दरताके घर ही हे. (अपह्लात और उपेक्षा अलंकार)

(४९) गोपांगनां मुञ्जति । हे सभि, गोपांगनाके अंगरी परम शोभाकर अभूत सरोवरमे' ये होय कुचइप अति सरस कमल प्रगट भये हैं, जेसे में मान' हुं' जेथेकि धन कमल जेपनके उपरके भागमे' बौरा (अमर) हुं जेठे हैं (स्थाम युच्च हे)

से। बौरा हे) तात्पर्य कि परम शोभाते' पूछ' कमल आपके कुचद्वय हे (इपक, उपेक्षा अनुमान अलंकार)

(५०) सुवर्णं सित युगिका कुमुमेति । हे सभि, श्रीशुष्की प्रियाल, सोनजूही (पीणी) तथा रमेत जूहीके कुलनते' गनी, करतुरी और कुंभके लाव कछुनते' रंगभेरणी लभ' जेसी, कुचो' पर हिल रही जेसी, विलक्षण नूतन प्रकारकी, अद्भुत मालाको रंगभेर'गे वचके भीतर धारण करती परम शोभित लभ'.

(५१) सुन्दर कुच इति । हे सभि आपकी सुकम (पातणी) कटि पर मछीन (गारीक) रोमावली, नाभिइप सरोवरमे' प्रगट भये सुंदर कुचइप सुवर्णकमल, ताकी हांटीसी शोभित लभ'. (नाभि सरोवरसी हे, कुच कमल सरिये हे, रोमावली तिनकी हांटी और कटि कुरा हे)

(५२) तनूत कुचलय वलेति । हे सभिजे वहु रोमावली नहिं हे किन्तु कामदेवने छेटी छेटी नीलकमलनकी पत्ती इप गाणु वा कृशांगीके उर प्रदेशमे' चलये हैं (यह रोमावली नीलकमलकी छेटी छेटी पत्तीनकी डार जेसी सोहत हे)

प्रियाल कुरांगी हे ताते' छेटी सी कमलकी पत्ती मारे हे कामदेवइप प्रियालकी सुकुमारताको जनत हे केसी सुकुमारता। कामदेवके पांय गाणु हे: लक्ष्ण, प्रहसन, मोहन, मूर्च्छन' और विशेषण से। यहां लक्ष्ण गाणुको प्रथम प्रयोग कियो हे मोहन मूर्च्छनादि गाणुको प्रयोग होतो तो छट बीनो न होय सकती. (उपेक्षा अलंकार)

(५३) स्वयं वृत्तो इति । हे सभिजे, रति-पति (कामदेव) इप धूर्त' भीमने (ग्राहीमार), नाभिइप शुशभे' छिपकर, प्रियालके उर सरोवरमे'

स्थित कामार-व्यप मन इप भीनको (मन्त्र) पकरियेक, अडिअ (हांटी) कार्यो हे, से ताकी डोरी इप यह रोमावली हे (१) शुष्-तनुष्णार्थ के शुष् यातायिदि (२) शुष्-उर (हारी) रोमावली नाभिते' लहय तांथ हे से जेसे भीमर मन्त्र पकरियेको सरोवरके किनारेपे' दुलककर (छुपाधने) जेठे हैं. कथेकि यंचल मीनके पकरियेको छिपके ही ठेठना परे हे, तेसे कामदेव हुं नाभिते' दुलकथा हे, कामार व्यपलम आदिको लाव यह हे जे पहेले प्रियाल सुग्या हुती वा सुग्यताके कारण सित जेल आदिमे' यंचल हुतो याहीते' आपके मनको काम असर नही करतो. अथ आपकी तनुष्णार्थ प्रगट लभ' याही कारण मनमे' स्थिरता, नाभिते' गहशर्ष और उदरमे' रोमावली प्रगट लभ'. (ये सग तनुष्णार्थके लक्षण हुं कुमार अवस्थामे' नहिं होत हे) और सितमे' कामदेवको असर होन लयेो हे, कामदेवको धूर्त कथो हे ताको लाव यह हे कि नाभिके अंगमे' स्थित होयके वाहीके मनको वश करे हे और याही कामदेवको रतिपति कथो हे ताको लाव यह हे कि यह काम लगवानमे' गोपिनीक रतको पोषक हे अर्थात् अवलोकिके डेतु सिद्ध करवेवारे हे. अंतमे' तात्पर्य यह हे कि आपकी नाभि कामके स्थान इप हे, रोमावली मनोहर हे और वय सन्धिकी अवस्था हे (कुमार अवस्थामे' तनुष्णार्थ प्राप्त हो रही हे.)

(५४) न सा रोमावली इति । हे आलि, वह रोमावली नहिं किन्तु प्रियालके लहयते' उचपन लभ' रसधारा, युंगार रसकी धारा ही नाभि इप तालावमे' गिरती शोभित होय रही हे. अपह्लाति अलंकार).

(५५) मत्तोजोकुम इति । हे सभि, मतवारे छाथिनको जे अपने कुंलस्थलकी शोभाके, जे धम'के से ताको आप हर करियेवारी हे छतनही नहिं किन्तु सिहरके मडको हुं हर करियेवारी ,

मानो या भातको ज्वालयवेको विधाताने आपकी कटि जेहात कुच गनाथ हे, अपने कुचनते' आप छाथीके मडको और कटिते' सिद्धनके मडको हर करे हे अर्थात् आपके कुच हस्तितके कुंलस्थलते' विशेष पुष्ट और कटि सिद्ध-कटिते' हुं क्षीणु हे. (उपेक्षा).

(५६) न तनुमव्यं तस्या इति । हे सभि, यंद्रावलीको वहु मध्य (कटि) नही हे किन्तु रतिस्थारको गोपनीयतत्प हे अत्योव वाको मध्यमे' स्थापन कियो हे (छुपाववा जेवु' गौन' पदाथीनी नाभामा संताडीजे तनु) और हे यंद्रावुभि, ये रोमावली नहिं हे किन्तु श्रीरनश्याम गिना व रतिरहस्यको जननिवेवारे और डोह नहिं हे वा भातको प्रगट करियेको विधाताने जह श्याम रंधा गनाथ हे (अर्थात्) श्याम रथाकी वडे उपरनी वीटी नखु लणी छे.) (अपह्लाति अलंकार).

(५७) नसा नामि तस्या इति । हे सधररी, वा नील कमललोचनीकी यह प्रसिद्ध नाभि नहिं हे. किन्तु, आपकी श्रीअंग हे से शोभाइप अभूतकी सरिता हे और ताके भीयमे' नाभि हे से आवर्त' (नदीमां लमरा-वमण पडे छे ते) हे. कथेकि हमारो: सभिनेको यतुर स्थित हुं धीरव, गति, विवेक आदि लुकिके वामे (जे वमणमां) दूज्यो ही व्यय हे. अर्थात् आपकी नाभि गंभीर और सुंदर हे. वतको दोपके स्त्रियनको स्थित हुं मोहित होय हे तो पुत्रवचरी तो भात ही कथो? (यहां कुचलयवलाक्षी कथेते' सूचित होय हे कि जेसे नदीमे' नील कमल होय हे तेसे आपके श्रीअंगइप सौन्दर्य सरितामे' नेत्रइप नीलकमल सोहत हे.) (अपह्लाति अलंकार)

(५८) विविच मणि जटित इति । हे सभि, अनेक मछिननां' जटित पुष्पाकार जे सोनेकी जूरी

ઉનને' કેસરી ભાંતિ લગિ રહે એસે એ કારે
રેશમકે ગુણ, ઉનને' શોભાયમાન એ અંતિ
ચટકીલી પીલી નીલી (અહિયાનુ' નાડુ') તાતે'
પ્રિયાણકી નીલી બ'ધન ઘસિ અતિ શોભિત હોય
રહી હે (પીતરંગનુ' નાડુ' છે. સ્યામ રેશમનો ગુણ
છે અને છેડે મહિજડિત સુવર્ણનુ' બનાવેલુ'
પુષ્પ છે. આ બધા ત્રેડે અહિયાના નાડાની અ'ધ
શોભી રહી છે.)

(૫૯) અપિ સલ્લિ નિતંબં હિતિ । કમલનયની
શ્રીપ્રિયાણના નિતંબ કમરકો પિછલો ભાગ હે સા
નિતંબ નહીં હે કિન્તુ રસકે સ્થાન રૂપ એ
જ્ઞન [કમરકો આગેડો ભાગ] તાકે પાસમે', રસ
સમૂહરૂપ ધનકો ખળનો (વિધાતાને બનાયો હે.
ઔર નિરંતર વાકી રક્ષા કરત હે. જેસે ધરમે
ખળનો એક આડી ધર્યો બય હે. તેસે યહ રસકો
ખળનો [પિછલી ઔર ઠોસ ધરિ રાખ્યો હે. યા
ખળનામે' શ્રી કૃષ્ણકો અતિ પ્રેમ હે.] (અર્થાત્
આપકો (પ્રિયાણકો) જ્ઞન રતિયોગ્ય હે ઔર
નિતંબ રતિકે ઉર્ધ્વપક હે તાસોં પ્રભુનકોં અતિ
પ્રિય લગે હોં) (યહાં રતિ કામ શબ્દતે પ્રેમકે
પરિણામ રૂપ અટોકિક કામ સમજનો ઔર
વિધાતા સો ભગવાન હી હે.)

(૬૦) વિચિત્ર મણિ મેલલા હિતિ । હે સરોજ-
નયાન સખિ આપકી વિચિત્ર મહિજડિત કુંદનીમે'
(કદોરામ) મનોહર મોતિનકો ભલ ગુડિ રહ્યો હે.
એસી રીતતે ભલ બનાયો ગયો હે કિ વહ ઉપર
પ્રગટ હી રીંગે ઔર તાકી ચારોં ઔર બડે બડે
મોતિનકે વૃંધર લગ રહે હે (મોતિની વૃંધરીએ)
વે અપનો મધુર શબ્દ કરકે દેવસોનકો મોહિત
કરે હે ઔર કાન્તિતે અમચ્ચમાતે (એમાંથી પ્રભા
નીકળી રહી છે એવાં) શોભિત ભયે અર્થાત્ આપ
બાબની (રણધર કરતી) મહિજમ કુંદની (કદોરો-
કટિમેખલા) ધારણ કર ચોભે હે એ દેવસોનકોં દુ
હર્બલ હે.)

(૬૧) સુવમા નિવાનં હિતિ । હે સખિ, પરમ
શોભાકે નિવાન એસે શ્રીકૃષ્ણકે ભુષણરૂપ શ્રી
પ્રિયાણકે દોનોં ભુજ, વિધાતાને અનેક મનોરચતે
બનાયે હે વે દોનોં ભુજ કારી સુંદર કાચકી ચુરિનતે
અધિક શોભિત ભયે. તાત્પર્ય યહ હે કિ-પરમ
શોભિત શ્રી કૃષ્ણકે કંઠકો હુ પ્રિયાણકે ભુજ શોભિત
કરે હે. લીલા વિવાહમે પ્રિયાણ પ્રિયકે કંઠમે
ભુજ કારિકે ગલબાંહી દેત હે તથ પરમ શોભા
દેાત હે. પ્રિયાણકી ભુજ શ્રીકૃષ્ણકે કંઠ ચોઅ હે,
ઔર ચુરી ભુજનકે લાયક હે.

(૬૨) તતઃ કનક કંકણ હિતિ । હે સુમુખિ હે
પ્યારી સખિ, ઉન કારી ચુરિનકે ઉપર સ્યામ
રેશમકે ફૂલનતે શોભિત સુવર્ણ કંકણ પઢેર રાખે
હે. તાકે ઉપર મોતિનકે કંકણ ધરે હે યા કારણ
મનોહર દોનોં હાથનમે' કંકણકો હલાવતી શ્રીકૃષ્ણ-
પ્રિયા અલંકાર શોભિત ભર્ષ. (સાધિકા વલ્લભપ્રિયા
કહે હે તાતે' શ્રી ચંદ્રાવલીજી એક યુથાધિપતિ
હે યહ સૂચિત ભયો.)

(૬૩) તતઃ પન્નાત્ હિતિ । હે કમલમુખિ, ઉન
મોતિનકી ચુરિનકે ઉપર સોનેકે કડુલા ધારણ કરતી
ઔર ઉનકે હુ ઉપર વે ગૌરંગી (ગેરી) ચંદ્રાવલીજી
હમારે મન ઔર નેત્રનકે પાશ જેસે મરપત્ર મણિકે
બાગુબ ધનકોં દોનોં ભુજનમે' ધારણ કરિકે કોનસી
સોનકે ચિત્તકો હરણ નાહ કરતી ભર્ષ? અર્થાત્
આપકે સ્વરૂપકોં દેખિકે સોમાત્ર મોહિત
હોય હે, અહો! શ્રી પ્રિયાણકો સોનકે' કેસો હે?
ફિર શ્રીકૃષ્ણ કયેાં ન મોહિત હોય?

(૬૪) વિવિધ મહામણિ જટિલ હિતિ । હે મુગ
લોચાન, પ્રિયાણકી દશ અંગુલિધનમે' નાના
પ્રકારકી મહામણિનતે જટિલ ભર્ષ એસી સુવર્ણકી
અંગુલી શોભિત ભર્ષ હે. પ્રિયાણકે નખચંદ્રકે
કિરણનતે વે અંગુલી શોભાયમાન હે. તાત્પર્ય યહ

હે કિ આપ તો સહજ સુંદર હે' કહુ અંગુલીતે
શોભા થોડે હી હે કિન્તુ વહ અંગુલી આપકે નખનતે
શોભિત ભર્ષ હે અર્થાત્ આપકે અંગ ભુષણનકે
હે આભુષણ રૂપ હે.

(૬૫) નમોમાહુ હિતિ । હે સખિ, પ્રિયાણકે વે
આહુ નહીં હે કિન્તુ પ્રેમાનુતતે પરિપૂર્ણ કમલ-
નાલ હે. અત્યેવ કોમલ કરતલ (હથેલી) નહીં હે
કિન્તુ કમલકી પાંખડી હે ઔર વે પ્રકાશમાન
નખ નહીં હે કિન્તુ ઉન પાંખડીકી પ્રભા હે!

અર્થાત્ આપકી ભુજએ' મુષાલકીસી કોમલ-
અરુણ રસરૂપ સુગન્ધયુક્તા હે ઔર નખપ્રભા-
યુક્તા હે. (અપહુતિ અલંકાર).

(૬૬) નો પાણિ રેવઃ હિતિ । હે પ્રિય સખિ યહ
પ્રિયાણકે હરત નહીં હે. યહાં સુંદરમે' કસે હે?
યા પ્રકારકો સંદેહ શ્રી પ્રિયાણકી બ'ધા-સાધળ
હાથીકી સુંદ જેસે ઉત્તરઅલાવવારી ઔર મન્દ
મન્દ ઝાખન કરવેવારી હે, તાતે' હોય હે.

(૬૮) કદલો કાંઠ હિતિ । હે સખિએ,
પ્રિયાણકી વે દોનોં બ'ધા નાહિ હે કિન્તુ કદલી-
સ્તંભસે બને હુએ કામદેવકે હિંડોરકે દોનોં ખંભ
હે એસે વે માન' હુ-અર્થાત્ આપકી દોનોં બ'ધા
કદલી સમાન સુંદર હે ઔર કામકી ઉર્ધ્વપક હે.

(૬૯) તસ્યા સાન્નેતિ । હે સખિ, આનંદ
યુક્તા ગોવિન્દમે' મનવારી મુગલોચની શ્રીચંદ્રા-
વલીજી વે દોનોં બ'ધા નહીં હે કિન્તુ રતિ-
સદન કે હોય સ્તંભ હે. કામદેવની સો રતિ. તેતુ
ધર, અને એ ઘર આગળના યે થોભલાએ, રૂપક છે.)

(૬૦) વિવિધ નુપુર હિતિ । હે સુભગ શુચ-
વારી સખિ, અપને નાના પ્રકારકે નુપુરનકે

મનોહર નાદતે ઇન્દ્રકી વધુ (ઇન્દ્રાણી) કે ચિત્ત
જિનને મોહિત કિયો હે ઔર ચટકીલી મહાવર
(ચેત્રી-અળતો) જિનકી અંગુલિધનમે' લગી રહ્યો
હે એસે આપકે ચરણ શોભિત ભયે હે.

(૭૧) સ્મિત લક્ષ્મી હિતિ । આપકે મંદ
સુસ્કયાનકે તનક અંશતે કામદેવ લલિતજત વહેકે
ચરણકમલમે' પ્રણામકે દિવે ગિર્યો સો વે નખ
નાહિ હે; કિન્તુ વા કામદેવકે માથે મને ચંદનકે
ગિન્દુ લગ રહે હે ઉનકો યહ પ્રતિભિંબ હે. (નખ એ
નખ નથી પણ એ કામદેવના લલાટ-ચંદન-બિંદુ-
એના પ્રતિભિંબ છે.)

(૭૨) તસ્મા કૃષ્ણેન્દુ હિતિ । હે સખિએ
ચન્દ્રાવલીજીકો કૃષ્ણરૂપી ચન્દ્રતે સમાગમ હોય-
વેવારો હે, એસો ભવિષ્ય, ભગવદ્ભજનબંધ
સાનસાં ભનિકે ચતુર વિધાતાને, શ્રીકૃષ્ણરૂપી
ચંદ્રકે શોભ (ચંદ્ર શીતલ હોયથેસુ' તસ્મ'બંધી
સવ' શીતલ હોનો ચાહિયે, એસે) ચંદ્રાવલીજીકે
દોનોં ચરણ, કમલકે સાર-તત્તસનોં, અતિ શીતલ
મનોહર બનાયે હે; ઔર ઉનકે અચ્ચભાગમે', શ્વેત
કિરણકે સમૂહ દથ ચંદ્ર લગાય દિયે હે સો
'નખ' કહે ભત હે. અર્થાત્ આપકે ચરણ કમલસોં
બી કોમલ હે' નખ ચંદ્ર સમાન ઉજ્જવલ કાન્તિ-
યુક્તા શીતલ ઔર સુખપ્રદ હે (ઉત્પ્રેક્ષા અલંકાર)

(૭૩) ચરણોગુલયાહિતિ । મુગનયની ચંદ્રા-
વલીજીકે ચરણકી અંગુલિધનકે આભુષણ અલંકાર
કાન્તિવારે એસે શોભિત ભયે માનોં વિષમ
અનંતરૂપ મહિજધર સર્ષકે ક્ષણકી મહિ પ્રકાશ
માન હોય રહી હે (અર્થાત્ આભુષણયુક્તા ચરણકી
અંગુરિયાં સુંદર ઔર કામોર્ધ્વપક હે, (एण +
शब्द + अक्षया-હિરણ્યકે યાલક જેસે નેત્રવારી-
શ્રી ચંદ્રાવલીજી.

(૭૪) તાદૃશ ચિત્ર દ્વિતિ । વહ કમલલયાંગી પ્રિયાણ ચિત્રવિચિત્ર વચ્ચે અચલ ભાષે ઓઠ રાખ્યો છે એસે મસ્તકપરે રંગ ઘેરંગી રેશમી ઇંદુરી (ઉઠાણી) ધરિકે, તાકે ઉપર દહીકી મટુકી ધારણ કરતી, અધિક શોભિત ભઈ. સો માનો યે દહીકી મટુકી નહીં હે; શ્રીકૃષ્ણકી ભેટ હી હૈ યાસેાં અધિક શોભિત ભઈ ઓર યહ સુચિત હોય હૈ કિ સખ અલંકારનકે ઉપર મટુકી હી શ્રેષ્ઠ અલંકાર રૂપ મોહિત હૈ નાંતર સુકુમાર શ્રીપ્રિયાણ નિનકે સંગ સેકરોં દાસી હૈં વે અપને સિરપર મટુકી કાહેકો ધારણ કરતી? સખ શુંગારકી અપેક્ષા (અથા સિંગારનાં કરતી) યાકી શોભા વિશેષ હૈ ઓર ગોરસકે બ્યાજતે (ગોરસને બહાને) આપ અપનો સર્વસ્વ રસ પ્રભુનકો અર્પણ કરિવેકોં બડે ઉત્સાહતેં ચલી હૈ. દધિકલસ શ્રી કૃષ્ણકી ભેટ સરિણો હૈ એસે કહ્યો તારેં યહ ભાર હૈ કિ મુખ્ય ભેટ તો અપનો આત્મા હી હૈ સો અપનો આત્મા અર્પણ કરવેકોં ચલી હૈ.

સો ભગવાન રસરૂપ હૈ ઓર નિજ પરિકર હુ રસાત્મક હૈ. આત્માતેં હી કીકા કરે હૈ ઓર ભક્ત હુ અપનો આત્મા અર્પણ કરે હૈ. સો એસી રસરૂપ અલૌકિક ભગવાનકી લીલા હૈ. રસરૂપ આત્માકો અર્પણ તત્સદૃશ રસરૂપ ગોરસતેં પ્રતીત હોય હૈ. બસ, યા ભાવકોં પ્રગટ કરવેકો આપને દહેરં (દધિકી મટુકી) ધારણ કરિ રાખી હૈ.

(૭૫) અલોલ શ્રીઞ્ઞ દ્વિતિ । હે સખિ, સુન્દર દહીકી મટુકીકો મસ્તકપર એસે ધારણ કરી હૈ જો શ્રીવા (ડાક) તનક હુ હાલે નહીં હૈ. ઓર અપને યૌવનકે મહતેં સુરેન્દ્ર પ્રધાનાકેનકો તુચ્છસે સમગતી હૈ ઓર મંદ મંદ હસતી લજ્જાસેાં ચપલ દીપ્તિવારી આપ કોનસી સ્ત્રીકોં મોહિત નહીં કરતી હૈ? અર્થાત્ સખ સખીજન જો સંગ હૈં સો સખ આપકે સ્વરૂપ પર મોહિત હોત હૈં.

(૭૬) હે સખિ, અનેક ગોપિજનતેં વેગિત (વૈંટળાયેલી) આપ, અપને કંકલ, કટિરેખલા, નૂપુર આદિકો મધુર અમનદ શબ્દ કરતી, અપની મનોહર ચાલતેં, વનમેં ચલિવે લગી. સો વહ સરખી અપતી ભઈ સુદેરકો મિત્રસહિત શ્રી નંદનંદને, રચકે દૂરતેં કછુકે કછુકે દેખિ લીની.

શ્રી ચંદ્રાવલીજી અનેક સખિઓ સાથે, નખ શિખ અદ્ભુત શૃંગારયુક્ત, મસ્તક ઉપર દધિકલશ લઈને, નૂપુર આદિના મધુર નાદ કરતાં વનમાં પધારે છે અને શ્રી નંદનંદન મિત્રો સહિત કંઈકે દૂરથી તેમને નીરખી રહ્યા છે.

(૭૭) (હરિણી છંદ)

ભજિતનયને ભેતાં ભેતાં
રૂઝા મુખપચને,
નજર ડરતી તેને પાછી,
પ્રભુ ન લઈ શકે
નિજ સહચરો સાથે તોયે
પ્રિયા પર ચિત્ત છે
પ્રિય સાગિ! જરા લજ્જત
શંકા વિવેક ન તેને.

(૭૭) ટીકા-ચક્રિત નેત્રોથી પ્રિયાણના સુંદર મુખકમલને નીરખતા પ્રભુ પોતાની દષ્ટિને લેશ માત્ર પણ લ્યાંથી ખસેડી શકતા નથી. એમના સૌ દર્શથી એવા સુગ્ધ થયા છે કે નેત્રો આશ્ચર્યથી ચક્રિત બન્યા છે. પ્રિયાણએ એવું ચિત્ત હરણ કરી લીધું છે કે પાસે રહેલા પોતાના મિત્રોની શરમ-શંકા પણ છૂટી ગઈ છે વિવેક પણ છૂટી ગયો છે, અર્થાત નિ:શંક અને લજ્જાસ્પદ બનીને મોહિત થઈને એકીંદ્રસે પ્રિયાણનું મુખ-દર્શન કરી રહ્યા છે.

(૭૮) (વંશરથ છંદ)

ચંદ્રાવલીના ઉપહાસ શબ્દે,
દ્રવી સુગન્ધીમય વાયુ વાય,
તેનો થતાં સંગમ અંગમાં શુ,
સ્વસંગથી રોમ ખડાં કરાય,

(૭૮) ટીકા : શ્રી ચંદ્રાવલીજી, પ્રિયતમને એઈને પોતાની સખીઓ પ્રત્યે હસીને ભાવ સહિત કંઈકેવા લાભ્યાં. એ સમયે એમના મુખકમલની (ચર્ચિત તાંબુલ આદિની) સુગન્ધ પ્રગટ થઈ, વાયુ સાથે મિશ્રિત થઈ, અને એ સુગન્ધયુક્ત પવનનો શ્રીજીને સ્પર્શ થતાં બાણે કે સાક્ષાત્ પ્રિયાણના સ્પર્શ થયો હોય તેમ આપશ્રીના અંગમાં શેામાંચ થઈ આવ્યાં. (સુગન્ધયુક્ત પવન ઉદ્દીપન વિલાસ તેનાથી શેામાંચરૂપ સાંત્વિક ભાવ પ્રગટ થયા.)

(૭૯) (ગીતિ છંદ)

સમગ એ સહ કરવે,
સહચરથી અભાણ્યતો કઈ રીતે
એમ ઉપાય વિચારી,
મજબૂર વહતા મજબાહોલને તે.

(૭૯) ટીકા : હવે એમનો સમાગમ કેવી રીતે કરવો અને તે પણ પોતાના સખાઓ ન સમજે એવી રીતે તે માટે શ્રીહરિએ ઉપાય વિચારી કાઢ્યો. સખાઓને કહેવા લાગ્યા :

(૮૦) (શાદ્દલવિકીડિત છંદ)

“ગોપી ગોરસ વેચવા
સહ મળી, આ નાથ આપ્યા વિના

માડું દાન તમે અહીં સુજ કરને
લાવો ત્વરાથી બધા
તેઓને વહનો, ન કો અકકશેા
એવી છુણી સ્વામીની
વાણીને ઝટ થોભ થોભ વહતા
તે લ્યાં ગયા તે પછી.

(૮૦) ટીકા : “અરે ગોવાળો, આ બધી ગોપીઓ હળી મળીને, માડું દાન આપ્યા વિના જ ચાલી બચ છે. તમે સત્વર મારી પાસે યોલાવી લાવો. ભેજો તેમને અકકશેા નાહ હો, સુખથી જ બધું કહેવું.” આવી પ્રભુની વાણી સાંભળતાં જ “હું ગોપીઓ, ભીસી રહ્યો, ભીસી જુઠા એમ કહેતા ગોપબાળકો, દોહતા તેમની પાસે આવી પહોંચ્યા.

(૮૧) (અતુટુપ છંદ)

લ્યાં કોઈ તેમને બોલ્યાં, કેમ રે ગોપબાલક,
બોલાવે નંદનો પુત્ર, તમને ગોકુલેશ્વર.

(૮૧) ટીકા : કોઈકે ગોપી બોલી “કેમ અરે ગોવાળિયા, (તમે કેમ આપ્યા છે?) લ્યાં તે કહે છે કે, તમને ગોકુલના અધિપતિ શ્રીનંદનંદન બોલાવે છે. (ગોકુલના અધિપતિ છે તેથી તમને બોલાવવાનો તેમને હક છે. વળી નંદનંદન છે તે તમને પણ આનંદ આપશે.)

(૮૨) (અતુટુપ છંદ)

કુલાંગનાઓ, શુ કેમ, તેહની દાસીઓ અને,
પ્રતિષ્ઠાથી તમે જાઓ, ન તુથી ભય પાગીએ.

(૮૨) ટીકા : ગોપીઓ કહે છે. આતુ કેમ બોલો છે? અને કંઈ તેની દાસીઓ નથી. અને

(૭૪) તાજા ચિત્ર દર્શિત । વહ કમલલાયગી પ્રિયાણ ચિત્રવિચિત્ર વસ્તુકો અંગલ ભવે ઓઠ રાખ્યો છે એવે મસ્તકપરે રંગ ઘેરગી રેશમી ઈંદુરી (ઉઠાણી) ધરિતે, તાકે ઉપર દહીકી મટુકી ધારણ કરતી, અધિક શોભિત ભઈ. સો માનો યે દહીકી મટુકી નહીં હે; શ્રીકૃષ્ણકી ભેટ હી હૈ યાસોં અધિક શોભિત ભઈ ઓર યહ સુચિત હોય હૈ કિ સમ અલંકારનકે ઉપર મટુકી હી શ્રેષ્ઠ અલકાર રૂપ સોહત હૈ નાંતર સુકુમાર શ્રીપ્રિયાણ નિનકે સંગ સેકડોં દાસી હૈં વે અપને સિરપર મટુકી કાહેકો ધારણ કરતી? સમ શુગારકી અપેક્ષા (મથા સિંગારાનાં કરતી) યાકી શોભા વિશેષ હૈ ઓર ગોરસકે વ્યાજતે (ગોરસને બહાને) આપ અપનો સર્વદેવ રસ પ્રભુનકો અર્પણ કરિવેકોં બડે ઉત્સાહતે ચલી હૈ. દધિકલસ શ્રી કૃષ્ણકોં ભેટ સરિયો હૈ એસે કછો તારે યહ ભાવ હૈ કિ મુખ્ય ભેટ તો અપનો આત્મા હી હૈ સો અપનો આત્મા અર્પણ કરવેકોં ચલી હૈ.

સો ભગવાન રસરૂપ હૈ ઓર નિજ પરિકર હુ રસાત્માક હૈ. આત્માતે હી કીકા કરે હૈ ઓર ભક્ત હુ અપનો આત્મા અર્પણ કરે હૈ. સો એસી રસરૂપ અલૌકિકે ભગવાનકી લીલા હૈ. રસરૂપ આત્માકો અર્પણ તત્સદશ રસરૂપ ગોરસતે પ્રતીત હોય હૈ. બસ, યા ભાવકોં પ્રગટ કરવેકો આપને દહેરં (દધિકી મટુકી) ધારણ કરિ રાખી હૈ.

(૭૫) અલોલ શ્રીચંદ્ર દર્શિત । હે સખિ, સુન્દર દહીકી મટુકીકો મસ્તકપર એસે ધારણ કરી હૈ એ શ્રીવા (ડાક) તનક હુ હાલે નહીં હૈ. ઓર અપને ચોવનકે મહતે સુરેન્દ્ર પ્રહ્લાદિકેનકો તુષ્છસે સમજતી હૈ ઓર મંદ મંદ હસતી લગ્નસોં ચપલ દષ્ટિવારી આપ કોનસી સ્ત્રીનકોં મોહિત નહીં કરતી હૈ? અર્થાત્ સમ સખીજન એ સંગ હૈં સો સમ આપકે સ્વરૂપ પર મોહિત હોત હૈં.

(૭૬) હે સખિ, અનેક ગોપિજનતે વેળિત (વેંટળાયેલી) આપ, અપને કંકલ, કટિનેખલા, નૂપુર આદિકો મધુર અમન્દ શબ્દ કરતી, અપની મનોહર ચાલતે, વનસે ચલિવે લગી, સો વહ સચીપ આવતી ભઈ સુદેરીકો ભિન્નસહિત શ્રી નંદનંદને, રચક દૂરતે કછુકે કછુકે દેખિ લીની.

શ્રી ચંદ્રાવલીણ અનેક સખિઓ સાથે, નખ શિખ અદ્ભુત શુગારશુક્રા, મસ્તક ઉપર દધિકલશ ભઈને, નૂપુર આદિકો મધુર નાદ કરતાં વનમાં પધારે છે અને શ્રી નંદનંદન મિત્રો સહિત કંઈકે દૂરથી તેમને નીરખી રહ્યા છે.

(૭૭) (હરિણી છંદ)

હરિજનનયને ભેતાં ભેતાં
રૂઠાં મુખપવને,
નજર ડરતી તેને પાછી,
પ્રભુ ન ભઈ શકે

નિજ સહચરો સાથે તોયે
પ્રિયા પર ચિત્તે છે
પ્રિય સખિ! જરા લગ્ન
શંકા વિવેક ન તેમને.

(૭૭) ટીકા—અકિત નેત્રોથી પ્રિયાણના સુંદર મુખકમલને નીરખતા પ્રભુ પોતાની દષ્ટિને લેશ માત્ર પણ લ્યાંથી ખસેડી શકતા નથી. એમના સૌ દર્શથી એવા સુગ્ધ થયા છે કે નેત્રો આશ્ચર્યથી ચક્રિત બન્યા છે. પ્રિયાણએ એવું ચિત્તં હસ્થ કરી લીધું છે કે પાસે રહેલા પોતાના મિત્રોની શરમ-શંકા પણ છૂટી ગઈ છે વિવેક પણ છૂટી ગયો છે, અર્થાત નિશક અને લગ્નપરહિત બનીને મોહિત થઈને એકીટસે પ્રિયાણનું મુખ દર્શન કરી રહ્યા છે.

(૭૮) (વશરચ છંદ)

ચંદ્રાવલીના ઉપહાસ શબ્દે,
દ્રવી સુગન્ધીમય વાયુ વાય,
તેનો થતાં સંગમ અંગમાં શુ,
સ્વસંગથી રોમ ખડાં કરાય.

(૭૮) ટીકા : શ્રી ચંદ્રાવલીણ, પ્રિયતમને ભેઈને પોતાની સખીઓ પ્રત્યે હસીને ભાવ સહિત કંઈકહેવા લાગ્યાં. એ સમયે એમના મુખકમલની (ચર્ચિત તાંબુલ આદિની) સુગન્ધ પ્રગટ થઈ, વાયુ સાથે મિશ્રિત થઈ, અને એ સુગન્ધયુક્ત પવનનો શ્રીણને સ્પર્શ થતાં બાણે છે સાક્ષાત્ પ્રિયાણનો સ્પર્શ થયો હોય તેમ આપશ્રીના અંગમાં રોમાંચ થઈ આવ્યાં. (સુગન્ધયુક્ત પવન ઉદ્દીપન વિલાવ તેનાથી રોમાંચરૂપ સાત્ત્વિક ભાવ પ્રગટ થયો.)

(૭૯) (ગીતિ છંદ)

પ્રસંગ એ સહ કરવે,
સહચરથી અભાણ્યતો કઈ રીતે.
એમ ઉપાય વિચારી,
મજબૂર વડતા મજબાલોને તે.

(૭૯) ટીકા : હવે એમનો સમાગમ દેવી રીતે કરવો અને તે પણ પોતાના સખાઓ ન સમજે એવી રીતે તે માટે શ્રીહરિએ ઉપાય વિચારી કાઢ્યો. સખાઓને કહેવા લાગ્યા :

(૮૦) (શદ્દલિખકીડિત છંદ)

“ગોપી ગોરસ વેચવા
સહ મળી, આ નાચ આપ્યા વિના

માડું દાન તમે અહીં સુજ કરને
લાવો ત્વરાથી બધા
તેઓને વહોને, ન કો અડકશે
એવી છુણી સ્વામીની
વાણીને ઝટ થોભ થોભ વડતા
તે લ્યાં ગયા તે પછી.

(૮૦) ટીકા : “અરે ગોવાળો, આ બધી ગોપીઓ હળી મળીને, માડું દાન આપ્યા વિના જ ચાલી બચ છે. તમે સત્વર મારી પાસે ચોલાવી લાવો. ભોભે તેમને અડકશે નહીં હો, સુખથી જ બધું કહેભો.” આવી પ્રભુની વાણી સાંભળતાં જ “હું ગોપીઓ, ભીલી રહ્યો, ભીલી વડો એમ કહેતા ગોપબાળકો, ઠોઠતા તેમની પાસે આવી પહોંચ્યા.

(૮૧) (અનુકૃપ છંદ)

લ્યાં કોઈ તેમને ગોદ્યાં, કેમ રે ગોપબાલક,
ગોલાવે નંદનો પુત્ર, તમને ગોકુલેશ્વર.

(૮૧) ટીકા : કોઈકે ગોપી ઘોલી “કેમ અરે ગોવાળિયા, (તમે કેમ આપ્યા છો?) લ્યાં તે કહે છે કે, તમને ગોકુલના અધિપતિ શ્રીનંદનંદન ગોલાવે છે. (ગોકુલના અધિપતિ છે તેથી તમને ગોલાવવાનો તેમને હક છે. વળી નંદનંદન છે તે તમને પણ આનંદ આપશે.)

(૮૨) (અનુકૃપ છંદ)

કુલાંગનાઓ, શુ કેમ, તેહની દાસીઓ અને,
પ્રતિપ્રાથી તમે જાઓ, ન તુથી ભય પામીઓ.

(૮૨) ટીકા : ગોપીઓ કહે છે. આવું કેમ યોવો છો? અને કંઈ તેની દાસીઓ નથી. અમે

તો કુલાંગનાઓ (ઉચ્ચ કુળની સ્ત્રીઓ) છીએ. મજબા રાજ તરીકે મોલાવવાનો અધિકાર હોય તે પુરૂંપોને મોલાવવાનો હોય અમને સ્ત્રીઓને નહીં. વળી, અમે કંઈ તેની દાસીઓ પણ નથી કે જેથી તે અમને મોલાવી શકે! તમારામાં હકાપણ હોય તો માનભેર પાછા ચાલ્યા બન નહીં તો અપમાન સહેતુ પડશે. વળી અમે તમારાથી ખીતાં પણ નથી.

(ઓપરજ્ઞસિક)

ન અમે કંઈ ઉચ્ચ વેણુ વહિએ, સાહસથી કુલસ્રીઓને, કરવું મજનાય જે કહે તે શું છુપાતું! સ્વધેર જાઓ તો રે.

ટીકા : ગોપા કહે છે કે 'ગોપીઓ, અમે અમારા તરફથી સાહસ કરીને તમને કંઈ પણ વધારે પડતું કહેતા નથી. કુલસ્રીઓને અમારાથી તો કંઈ કહેવાય જ નહીં. પરંતુ મજનાયની આમાડું પાલન કરવું એ આમાડું કરવું છે અને તે અમે કરી રહ્યા છીએ.

ગોપીઓએ જેવું કે શ્રીકૃષ્ણ ગોપબાલકો દ્વારા પોતાને મોલાવી રહ્યા છે. પોતે પણ પ્રિય-મિલનના મનોરથ કરીને જ ઘેરથી નીકળ્યા છે હવે ચતુરાઈપૂર્વક પ્રિયના એકાન્ત મિલન માટે યુક્ત શોધતા, તેઓ ગોપોને કહેવા લાગ્યા : (બહુકે તેમને ઉપહાસ કરતા હોય તેમ કહે છે.) અરે ગોપબાલકો, વનમાં જેલતાં જેલતાં મોડું થવાથી તમને ભૂખ લાગી હશે એમ બહુને તેમારા સ્વામી કૃષ્ણ અમને ગોરસવાળીઓને મોલાવતા હશે! શું તમને ખરેખર ભૂખ લાગી છે? તો તમે તમારા ઘેર જાઓને! (ખાવા માટે) આમ પારકી વસ્તુની આશા શા માટે રાખવી?

(૮૪) [ગીત છંદ]

ન જાઓ નંદયથય છે,
મજપતિ તેના હુકમ વિના વનમાં
વૃંદા સ્ત્રી તેવું વન
કયાંથી વિચિન અમાડું આ.

(૮૪) હવે ગોપીઓ વનમાં આગળ જવા ચાલવા લાગે છે. ગોપીઓ કહે છે કે "મજપતિની આશા વિના તેમના વનમાં તમે આગળ ન જાઓ. તમને નંદરાયજીની આજ્ઞા છે."

ગોપીઓ કહે છે કે "અરે, આ તો વૃંદાવન છે." વૃંદા સ્ત્રી હોવાથી આ તો સ્ત્રીઓનું વન છે. અર્થાત્ અમાડું છે એમનું વન કયાંથી આપ્યું? અહીં અમને રોકવાનો તમને શો હક્ક છે?

(૮૫) (અનુષ્ટુપ)

વક્તા તમ વાણીમાં, દેખાય જ અલૌકિક,
વક્તા શબ્દનો ધર્મ ખરો દષ્ટિ થતાં બને?

(૮૫) ગોપબાલકો ગોપીઓની ચતુરાઈથી હારી જતા લાગે છે. તેઓ કહે છે કે 'ગોપીઓ' તમારી વાણીમાં કોઈ અનોખી વક્તા દેખાય છે. (તમે વાંકું મોલી છાં).

"દેખાય છે" એ શબ્દો પકડીને ગોપીઓ કહેવા લાગી. "અરે અમારી વાણીનું વાંકાપણ તમને આંખેથી દેખાયું? એ પણ આશ્ચર્ય!! (અહીં વકોળિત અલંકાર છે.)

(૮૬) (અનુષ્ટુપ)

તમને અતિ શણુએ, શું ન્યાય પણ ભણીએ?
ભણવાને અન્યાય, હાવાં તું અહીં આવીએ?

તો બહુ ઠાઠા! અરે શું તમે ન્યાય (ન્યાયશાસ્ત્ર તર્કશાસ્ત્ર) પણ ભણી આવ્યા છોને? [અહીં પણ વકોળિત અલંકાર છે.]

(૮૭) [વસંતવિલકા છંદ]

તેવે વિલંબ ન સહી, રૂઢી મેખલાનંદ
શંચારથી કવલિત સુંદર ચાલથી આ;

ગેવર્ધનાંદ્રિ ધરૂં ચંચલ વસ્ત્રવાળા,
ચંદ્રાવલી નિકટ અંબુજનેર આવ્યા.

(૮૭) ટીકા : સ્વપ્રિયના મિલનમાં થતો આ વિલંબ પ્રિયતમ સહી ન શકયા. ગોપબાલકો પાછા આવ્યા ન આવ્યા એટલામાં તો આપ ત્વરિત ગતિથી, શ્રીગેવર્ધન પર્વતના ચિખર ઉપરથી નીચે પધારવા લાગ્યા. એ સમયની શોભાનું વર્ણન કરે છે.

સુંદર કટિમેખલાની વૃધરીનો મધુર નાદ-
જંકાર કરતા મનોહર ચાલ ચાલતા પીતાંબરના
અચલને ફરકાવતા એ કમલનયન પ્રભુ તળેટીમાં
શ્રી ચંદ્રાવલીજીની સમીપ પધાર્યાં.

ગુહ આશયો : (૧) પીતાંબરની ચંચલતાથી ચાલની ત્વરા સુચવાય છે. (૨) ત્વરાથી પધારવામાં નવજ્યોતો ઉપરની કૃપાની અતિશયતા દર્શાવે છે. (૩) કમલનયન એ વિશેષણથી દષ્ટિ દ્વારા ભક્તોના તાપ હર કરવાનું કાર્ય સુચવાય છે. (૪) પીતાંબર ઉપર ધરેલી કટિમેખલાની મધુર ધ્વનિનો ભાવ આ પ્રમાણે છે. પીતાંબર વેદ રૂપ છે. (વાસોદેવદીમધ્યમ-શ્રીમદ્ ભાગવત).

આવા પીતાંબર ઉપર ધરેલી મેખલાનો ધ્વનિ થાય છે, તે વેદ ધ્વનિ છે બહુ વેદ ભગવાનની અતિની સ્તુતિ કરી રહ્યા છે. (૫) લોકદષ્ટિએ

વેદાતિત છે. વેદ પ્રભુની અચ્ચક્રા સ્તુતિ જ કરી શકે છે, સાક્ષાત્ વર્ણન કરી ચૂકતા નથી. અહીં મેખલાની વૃધરીઓ અચ્ચક્રા મધુરનાદ જ કરે છે; વેદનો અભિપ્રાય સૌ કોઈ સમજી શકતા નથી. વિરલ મહદ્ ભક્તો જ એને સમજી શકે છે. અહીં પણ મજબૂતો જ એ મેખલાનો નાદ અંતરમાં સમજી શકે છે (૬) મૂલમાં ગોવર્ધનાદ્રિ ગિરસ : (શ્રી ગિરિરાજના શિર ઉપરથી) એમ કહ્યું છે. એમાં એ ભાવ છે કે શ્રી ગિરિરાજજી મજબૂત ભક્તોના હિતકારી છે. શ્રી ગિરિવરને માથે ભિરાજતા શ્રીજી ભક્તોના અંગીકારમાં નિહાળ કરતા નથી. તેથી આપ સત્વરે ભક્તોની પાસે પધાર્યાં. વળી આથી એ પણ સુચવાય છે કે શ્રીગેવર્ધનસ્થિત પ્રભુના ભજનથી શીઘ્ર ભગવતપ્રાપ્તિ થાય છે.

(૮૮) [ઉપભતિ છંદ]

અગમ્યવાણી - જ્ઞાનથી કટાક્ષ
સૌન્દર્યનો લેશ વિચિત્રવેશ,

રિમતશ્રીએ મોહિત કામ જેણે,
દીક્ષા રૂઢા નંદકુમાર તેણે.

(૮૮) ટીકા : જેમના કટાક્ષની સુંદરતાનો લેશ પણ મનથી અહુલ ન થઈ શકે, વાણીથી વર્ણવી ન શકાય તેવો અહુલુત છે. તેમજ પોતાના મંદ હારયની શોભાથી જે કામદેવને પણ મોહિત કરે છે એવા સુંદર નંદકુમારને ચંદ્રાવલીજીએ સમીપમાં જોયા.

[પ્રભુ કટાક્ષપૂર્વક દષ્ટિ કરતા પધાર્યાં, એ સમયે નેત્રોની શોભા કેવી છે તેવું વર્ણન કરે છે. આધિદેવિક કામદેવને પણ મોહિત કરે તેવું સ્વરૂપ છે તો એ સ્વરૂપથી કામદેવની સેનારૂપ સ્ત્રીઓ મોહિત થાય એમાં તો આશ્ચર્ય જ શું? ચંદ્રાવલીજી મોહવશ જન્યાં.]

વદન સુધાનિધિ શોભા જ્ઞાનિધિ
મહી મન દહિને સદશી,
અળગી કરી શકે નહિ સહસા,
તે સહ મન પશુ ગયું વળગી.

(૮૯) ટીકા : પ્રિયતમના સુખચંદ્રના સૌંદર્ય-
સાગરમાં પ્રિયાની દહિટ એવી તો રૂપી ગર્ધ કે
તેઓ તેને તેમાંથી બહાર કાઢવાને અસમર્થ
બન્યાં, એટલું જ નહિ પણ એ શોભાસસુદ્રમાં
મન પશુ તરત જ મગ્ન થઈ ગયું. રૂપી ગયું.

સુખરૂપી સુધાનિધિ-ચંદ્ર તેના શોભા રૂપી
સાગર, તેમાં રૂપી ગયેલી દહિટને, ચંદ્રાવલીલ
બહાર કાઢી શક્યા નહિ કેમકે એ કાઢવાનું સાધન
મન પશુ દહિટ સાથે જ અંદર રૂપી ગયું. (દોરડા
સહિત ઘડા કુવામાં રૂપી ભય તેમ) સાધારણ
સસુદ્રમાં રૂપેલો મનુષ્ય પોતાની મેળે બહાર
નીકળી શકતા નથી તો અમૃતસસુદ્રમાં રૂપેલી
દહિટ સ્વયં કેમ નીકળી શકે ?

(૯૦) ગીતિ

અપાંગ રૂપ વિલાસીમય,
ઉત્તુગ તરંગે મન નયન,
અગાધ રસમાં પડિયાં,
બહાર લાંથી જવા નહિ સમર્થ.

(૯૦) ટીકા : સાગરનાં ભણે ભણે ભિછળતાં
(તરંગોનાં) મોલમાં સપડાયેલી વસ્તુ જેમ એમાંથી
નીકળી શકે નહિ તેમ પ્રિયતમનાં નેત્રકટાક્ષના
તરંગોમાં ફસાએલી દહિટ તથા મન અગાધ

આવવાનું સામર્થ્ય રહ્યું નહિ.

[ચંદ્રાવલીલ આપનું સુખ નીરખવા લાગ્યાં
અને પ્રભુ કટાક્ષખાણી છોડવા લાગ્યા એથી કરીને
તેઓ મોહમગ્ન, બાણેકે સમાંધિસ્થ બની ગયાં.
કેમ ન બને!]]

(૯૧) (મંદાકાન્તા છંદ)

વેણીને વા દધિકલશને, મસ્તકસ્થાયી જે વા,
તે રસ્તાને વળી ગમનને, વચ્ચ કંચુક્રીને વા,
સાહેલીને નિજગૃહ અને દેહને કુષ્ણને વા,
એ પ્રશાસિકા કર્ષન સમભે, તે સગે મોહમાં વા.

(૯૧) ટીકા : એ કમલનયનીએવાં તો મોહમગ્ન
બની ગયાં કે તેમને કશું જ ભાન ન રહ્યું. પોતાની
વેણીનું, માથે મૂકેલા દધિકળશાનું, કયે રસ્તે
આવ્યાં અને કયાં જવાનું તેનું, પોતાની સાડી
તથા ચોળીનું, સાથે રહેલી સખીએપનું, પોતાના
શરીરનું કે પોતાના ઘરનું ભાન ન રહ્યું. અરે સામે
પ્રીતમ ભોભા છે એનું પણ ભાન એમને ન રહ્યું.

[માથેથી દધિ-કળશ પડી ન ભય તેની કાળજી
રાખવાની તેમને શુદ્ધિ ન રહી, પવનથી વિખરાઈ
જતા કેશને પણ તેઓ સુધારી ન શક્યાં. મસ્તકે
ઉર ઉપરથી ખસી જતી સાડીને તેઓ સંધારી ન
શક્યા, સાથે સાહેલીઓ છે તે આ ભોઈ જથ્થે ને
બીજાને કહી દેશે એનું પણ ભાન ન રહ્યું. એટલું જ
નહિ પણ સામે ભોભેલા પ્રિયતમને પણ તેઓ
ભૂલી ગયા. આ ચંચોગ શૃંગારની પરમ ઉત્કૃષ્ટ
અવસ્થા છે કે જેમાં બહારની બીજી
કોઈ વસ્તુની શુદ્ધિ ન રહે. સમાધિ અવસ્થામાં
ચેતીઓને પ્રહાનનંદના આસ્વાદ લેતાં થાય છે
એ પ્રકારે થયું.]

તેશું અનુકૂલ તરંગ ધારે,
કટાક્ષપાતે સખિ શું વધારે,
વિશાળ ભળો સમ વાણીએ તે,
ઉદાર સંસાર કરતાં જ તેને.

(૯૨) ટીકા : ઉદાર શ્રીકૃષ્ણે ભેયું કે
ચંદ્રાવલીલ મોહમગ્ન બની ગયાં છે ત્યારે તેમાંથી
બહાર કાઢવા માટે, અનુકૂલ એવો કટાક્ષ પોતે
કર્યો, જેમ રૂગતા માણસને બચાવવા દોરડું
નાખવામાં આવે તેમ ભળ નાખીને સસુદ્રમાં
રૂગતાને બચાવી શકાય, તેમ ભળ સમાન વાણી
વડે (આપની વાણી સ્નેહમાં ફેસાવનારી હોવાથી
ભળ સમાન) તેમને શુદ્ધિમાં લાવવા પ્રયત્ન કરે
છે, કેમકે આવી જ મોહાવસ્થા ચાલુ રહે તો જે
લીલા કરવી છે તે કેમ થાય.

(૯૩) ઉપભતિ

એને પિયમાં ઉપજી હતી જે
આતુર્થ ધૈર્યાદિક. સુક્રિત તેવે,
છે એ જ ગોવિંદ પદપ્રતાપ
પ્રભાવથી માત્ર ન માતું અન્ય.

(૯૩) ટીકા : પ્રિયાણ હવે શુદ્ધિમાં આવ્યા.
પ્રિયતમ સાથે ચતુરાઈથી અને ધૈર્યપૂર્વક
વાર્તાલાપ કરવા લાગ્યાં. પ્રભુને રાખવા હોત તો
તેઓ મોહમગ્ન જ રહ્યાં હોત પરંતુ તેઓ
તેમાંથી ભગત થયાં એમાં પ્રભુનોજ પ્રતાપ ગને
પ્રભાવ કારણ રૂપ છે. પ્રભુએ જ તેમને
મોહનિદ્રામાંથી જગાડ્યાં.

હાસ્યે સુખે ચલ કટાક્ષ વિદોષ્યને ને
ભેતાં રૂકે સ્મિત તણી સુતિએ ગતિએ,
શું વર્ણવું બહુ સખિ, નિજ દક્ષતા એ,
થેલી કરે રસિકતા-નિધિ નાથ તેને.

(૯૪) ટીકા : રસિકતાના નિધિ એવા નાથે તેને
થેલી બનાવી દીધી, બાણેકે વરીકરણ કયું. શેનાથી ?
હાસ્યયુક્ત સુખથી, નેત્રકટાક્ષોથી, સ્નેહપૂર્વક
દહિટપાત કરીને મંદ સ્મિતની કાન્તિથી, મનોહર
ચાલથી; અરે બહુ વહુન કરવાથી શું ? સશ્લેષમાં
કહીએ તો પોતાની દરેક પ્રકારની ચતુરાઈથી તેને
થેલી બનાવતા પ્રભુ હવે કહેવા લાગ્યા. પ્રભુ
ગોકુલના નાથ છે શૃંગાર રસના અધિષ્ઠાતા છે.
ગોકુલવાસીઓના શૃંગાર રસના પરિપોષક છે.
રસના પોષણાર્થે આ બહુ કરી રહ્યા છે.)

(૯૫) (અનુકૃપ છંદ)

ગોવિંદ વચને બાણે, ભગ્યા તે પશુ સુંદરી,
સખી, ઉદત આપે ત્યાં, પ્રત્યુત્તર આનુત્તર.

(૯૫) ટીકા : અને એ સુંદરી પણ બાણે કે
ગોવિંદમાં વચનોથી મોહનિદ્રામાંથી સહસા ભગ્યુત
થઈ ગયાં છે અને હવે પ્રભુ જે જે કહે છે તે દરેકના
અર્થત દ્વિગતથી એવા પ્રત્યુત્તર આપે છે કે જેને
સામે જવાબ આપવો મુરકેલ ધર્ષ પડે છે.

[આ સુંદરી છે એમનું માત્ર રૂપ જ નહિ,
પણ મન અને વાણી પણ સુંદર છે અને એવા જ
સુંદર ઉત્તર-પ્રત્યુત્તરે પ્રભુને આપી રહ્યાં છે.]

(૯૬) (અનુકૃપ)

કેમ આપ્યા વિના ભતી, દાન ગોરસ વેચની,
સિંજતી મેખલા ધારી, સ્વવેલવ જણાવની.

(૯૬) ટીકા : શ્રીકૃષ્ણ કહે છે કે અરે, ગોરસ વેચવા બંધ છે તો તે ઉપરનો કર-દાન આપ્યા વિના કેમ બંધ છે? શું તું એમ માને છે કે કટિ-મેખલાની ઘૂંચરીઓ ધમકાવીને, અર્થાત્ આભૂષણોના વૈભવથી દાન લેનારને આજી દઈશ, એટલે એ મને ક'ઈ કહેશે નહિ! ના, ના, એવું નહિ બને! હું તારા ઠાઠથી અન્ધ બઈ એવો નથી. દાનલીલા વિના હું તને નહિ જવા દઉં. માડું દાન આપીને બ. [ગૃહાર્થ] એ છે કે પ્રભુ ગોકુલના સ્વામી નાથ છે. સર્વ વસ્તુ ઉપર એમનું સ્વામિત્વ (હક) છે. વળી યજ્ઞદિષ્ટતમં લોકે તદનુસાર તેમાં જે જે ઉત્તમ વસ્તુ હોય તે તથા પોતાને જે પ્રિય હોય તે પ્રથમ પ્રભુને નિવેદન કરવામાં જોઈ એ એ કયાં વિના લૌકિક વિનિયોગ થાય તે કેમ ચાલે! માત્ર ગોરસ જ નહિ, સર્વવસ્તુ પ્રભુને નિવેદન કરવું થોડ્ય છે. કેલ વિચારે તો ક્ષેત્રરૂપ શ્રીકૃષ્ણ સ્વયં પધાર્યા છે, ગોપીજનોના મનોરથો પૂર્ણ કરવા પ્રગટ્યા છે, અનુગ્રહ કરવા અને પધાર્યા છે. એમની વસ્તુઓને અંગીકાર એ પણ અનુગ્રહ છે પ્રભુ સિવાય અન્ય કોણ એમની વસ્તુને અધિકારી હોઈ શકે? પ્રભુને આપ્યા (સિવાય એ બીજે કેમ લઈ બંધ?

વળી એ પ્રભુને રીલવવા તો ઘેરથી નીકળ્યા છે! નહિતર આવા નિર્જન વનમાં કટિમેખલા આદિ-આભૂષણોના ઠાઠની શી જરૂર હતી? માટે પ્રભુ પૂછે છે કે તું મને ગોરસદાન કર્યાં વિના જ કેમ માલી બંધ છે.

(૯૭) (ગીતિ)

અલ્યાર સુધી મારી, ગતિ પણ
સુન્દર ન શું તમે નીરખી?
ભુજો, ભુજો, એમ કહી, ક્રતિપય
પગલાં ભરતાં તે સુસુખી.

(૯૭) ટીકા : પ્રભુએ પુછ્યું 'કયં ગચ્છતિ-કેમ બંધ છે? કેમ'ના બે અર્થ થાય છે 'શા માટે' અને 'કેવી રીતે.' ચંદ્રાવલીજી આ બે શબ્દોનો 'કેવી રીતે બંધ છે?' એવો અર્થ પકડીને વેકાક્રિતથી જીલટો જવાબ આપે છે.]

હે સુન્દર, હું કેવી રીતે બઈ છું-કેમ ચાલું છું એમ કહીને હસતાં હસતાં તેમણે કેટલાંક પગલાં ભરી બતાવ્યાં. (પ્રભુની સામે જિભાં હતાં ત્યાંથી પાછા ફરીને સામી દિશામાં.)

(૯૮) (પૃથ્વી છંદ)

ન જોઈ ગતિ શોભિની, ફરીથી મને,
સમીપ અહીં આવીને, નિજ ગતિ તું દર્શાવને,
અહો, કુલીન નારીને નિકટ તેડતા નિર્ભય,
તમે અવનવા દીસે વન વિષે જતાં ઉદ્ભટ."

(૯૮) ટીકા : તે જોઈને પ્રભુ સામી યુક્તિ અજમાવે છે. "ઓહો, તારી ચાલ તો સુંદર દેખાય છે. પરંતુ આમ પાછળથી મેલાથી બરાબર દેખાઈ નહિ. હવે મારી તરફ પાછી આવીને તું તારી સુંદર ચાલ મને ફરીથી દેખાડ."

ચંદ્રાવલીજી કહે છે, અહો, કુલવતી સ્ત્રીને પાસે આવવાનું કહ્યા છે? તમને કેમની બીક પણ નથી? તમે તો વનમાં રહેનારા કેઈ નિરકુશ પુરુષ દેખાવ છો? શહેરી સભ્યતા વનવાસીઓમાં કયાંથી હોય! બીભઓના દેખતાં આપું કહેતાં તમને બીક પણ લાગતી નથી?

(૯૯) (અનુષ્ટુપ)

શાની હવે મને ભીતિ, સહાય તુજ ધારતાં,
સ્વસહાયી કરે જોહો મને તો વિપરીત આ.

(૯૯) ટીકા : શ્રીકૃષ્ણ કહે છે અલ્યાર સુધી મને બીક લાગતી હતી. પરંતુ, હવે તો તારા જેવી સહાયક મને મળી ગઈ છે. હવે બીક શાની?

(મૂલ આશય-શ્રુતિ કહે છે : સોઝતિમેતે તસ્માદેકાકો નિમેતિ દ્વિતિ-સુષ્ટિના પૂર્વકાલમાં ભગવાનને ભય થયો કેમકે એકલા હતા, તેથી સહાયકની ઇચ્છા કરી. પછી વિચાર્યું કે મારાથી ભિન્ન તો ક'ઈ છે જ નહિ, હું દેનાથી કંઈ? વળી તે રમણ ન કરી શક્યા. કેમકે એકલાથી રમણ ન થઈ શકે. દ્વિતીયની ઇચ્છા કરી અને પોતાના સ્વરૂપમાંથી લીલાસુષ્ટિ પ્રગટ કરી.)

શ્રીચંદ્રાવલીજી કહે છે કે અરે, આ તો મનેજ પોતાની સહાયક બનાવે છે. જુઓ તો, આ કેવી અવળી વાત કરે છે! એક બાધુથી મને પજવવી રહ્યા છે ઉપરથી મને પોતાની સહાયક બનાવે છે આ પણ કેટલું વિપરીત-કેટલું અવળું.

(૧૦૦) ભઓ સખીઓ, ગોકુલ,
વૃત્તાંત કહેજ નંદજીને

આ તમ ધર્મરાજ્ય માર્ગે
નહિ શ્રવણ કયું પરંગના-ગ્રહણ.

(૧૦૦) ટીકા : ચંદ્રાવલીજી પોતાની સખીઓને સજોધીને કહે છે કે તમે ગોકુલ ભઓ અને નંદરાયજીને આ વૃત્તાંત કહો, અને કહો કે તમારા ધર્મરાજ્યમાં સ્ત્રીઓએ આવી જબરદસ્તી થતી કદી સાંભળી નથી. આજે તમારા લાડકવાયા પુત્ર પરસ્ત્રીઓને પજવી રહ્યા છે.

(૧૦૧) (ગીતિ)

તો શું નિમિત્ત જલઈ, કરે નિજ ગૃહે જવા તું ચાતુર્થ,
હું ગોપીજન, સંધ્યા સમય સુધી નહીં જવા દઉં શરત.

(૧૦૧) ટીકા : શાલુ કહે છે કતારા ચતુરાષ્ટ્ર હું સમજી ગયો છું. આ નિષે તે તારી સખીઓને ઘેર મોકલી દેવાની (અને તેમની પાછળ તારા પણ ચાલ્યા જવાની) તું યુક્તિ મૂકે છે પરંતુ હું ગોપીઓ, હું તમને કોઈને જાંજ પડતાં સુધી તો ઘેર નહિ જવા દઉં. (સંધ્યા સમયે મારે ગાંધા લઈને ઘેર જવું પડશે, તે પછી તમે જઈ શકશો.)

હવે આ વચનમાંથી, સ્ત્રીવૃથથી બીજો અર્થ નીકળે છે "હું ગોપીજન સંધ્યા સમય સુધી" એટલે સંધ્યા સમય સુધી હું ગોપીજન છું. "ભગવાને બાલ્યે આ પ્રમાણે કહ્યું એવા અર્થ લઈને, વેકાક્રિતથી તેનો પ્રત્યુત્તર આપે છે.

(૧૦૨) પૃથ્વી છંદ

તમે પુરુષવરને છો, પછી 'હું ગોપિકાં કાં વધા
અહો અવધિયુક્તા ને શ્રવણ ભદ્ર જે આપમાં,
બહુલ તમ શી રીતે વ્રજકુસાર કિંધ્યા ખરી,
દિસે તમ સુચાતુરી, સકલ વાદીને જીતતી.

(૧૦૨) ટીકા : હે પ્રભુ, આપ તો પુરુષોમાં પણ ભૂષણરૂપ છો, છતાં "હું ગોપીજન છું" એવું કેમ ગોલો છો? અને તે પણ સંધ્યા સમય સુધી! ત્યાં સુધી તમે સ્ત્રી વૃથ રહેશો, અને પછી પુરુષ બની જશો! આ બધું શું? વળી તમે એક છો છતાં હું ગોપીજન (ગોપીઓ) એમ કહો છો? એકના અનેક થયા છે! આપની અર્ચા વિચિત્ર વાત સાંભળીને તો અમને હસવું આવે છે! અહો, તમારી વાણીની ચતુરાઈ તો સકલ વાદીઓને જીતી લે એવી અદ્ભુત દેખાય છે (વ્યંગમાં કહે છે) કહેવાતું એ છે કે તમને મોલતાંજ આવડતું નથી. અમારી સાથે વાદવિવાદમાં હારવું પડે એવું અસંબંધ ગોલો છો! તો ચતુર શાના!

પણ નીચે પ્રમાણે ગૃહ આશયો રહેલા છે. ન્યારે શ્રી કાકુરણ દિવસે ગાયો ચરાવવા બંધ છે ત્યારે શ્રીસ્વામિનીલના તથા ગોપીજનોના વિશેષાધી, તેમનામાં પ્રભુ તનમય બની બંધ છે. અર્થાત્ સ્ત્રી પુરુષ બની બંધ છે. આવી મનઃસ્થિતિમાં સંધ્યા-પર્યંત વનમાં રહેવું પડે છે. ન્યારે વનથી વ્રજમાં પધારે છે ત્યારે મૂળ સ્થિતિમાં આવી બંધ છે. રાસ પંચોક્થાથીમાં જેમ ગોપીજનો તનમનસ્કાઃ તવાલાપાઃ પ્રભુમાં તનમય બની ગયાં તેમ અહીં ભગવાન પણ બની બંધ છે, જે જેમાં તનમય બને, તેના રૂપ ધર્મ બંધ. ” અહીં શ્રીલ ગોપી ભાવ ધારણ કરે છે, નાયક-નાયિકા સમાન ભાવ ધારણ ન કરે ત્યાં સુધી ચિત્તાસક્ત અને રસોત્પત્તિ કયાંથી ! માટે ભગવાન કહે છે કે “હું ગોપીજન સંધ્યા સમય સુધી” હું સંધ્યા પર્યંત તમારા જ ભાવને ધારણ કરું છું, તમને ઘેર નહિ જવા દઉં, મારી પાસેજ રાખીશ, સૌ સાથે સ્ત્રી રહે તો એમાં અનુચિત શું છે ? વળી, જેના વિરહમાં તનમય થયો છું તે અનાયાસે જ પ્રાપ્ત થયાં છે. તેમને હવે કેમ જવા દઉં ? પ્રભુનો આવા ગૃહ આશય સમજીને ગોપી પણ પ્રસન્ન થઈને પ્રભુની પ્રશંસા કરે છે, “અહો તમારી જોડવાની ચતુરાઈ કેવી અલોકિક છે. તમારી વાત ખરી જણાય છે કેમકે અમને પણ તનમયતાનો એવાજ અનુભવ છે. ન્યારે અમે આપના વિરહમાં આપના રૂપ ધર્મ જઈએ છીએ તો આપ અમારા રૂપ કેમ ન થાઓ ? રસનો સ્વભાવ છે કે બને તે આપુ સમ્પાન પ્રભાવ પડે છે ! તમારી ચતુરાઈજ નહીં બધુંજ અલોકિક છે. લોકિક દૃષ્ટિથી તમારા સ્વરૂપ વિશે વિવાદ કરનારા જ્ઞાત છે. અર્થાત્ તમારી અલોકિકતા બધા વાદીઓને છુટી થી જોવી છે. અલોકિક ભાવનામાં તક આલતા નથી તંથી લોકિક દૃષ્ટિથી પ્રભુ સંબંધી ચર્ચા કરવા આવે તે પરાસ્ત થાય છે. (આ ગૃહ આશયો વર્ણવ્યા, પ્રગટ અર્થ તો શુદ્ધો છે.)

વિશ્વાસ ઉત્પન્ન થવા અર્થોને
 બહુ સ્ત્રીઓ એમ વદે મુગાસિ,
 વધા વિના શબ્દ અધિ, તમોને,
 વિશેષ આ શ્વાસ થતો શ્રમે રે.

(૧૦૩) ટીકા : ગોપીઓ પરસ્પર વાર્તાલાપ કરે છે. એક ગોપી બીજીને કહે છે કે “આ તો આપણે સ્ત્રીઓ છીએ માટે આપણને એનામાં વિશ્વાસ ઉત્પન્ન કરવા માટે એવું કહે છે કે હું પણ ગોપી છું.”

આ ઉક્તિમાં ગોપીએ વિશ્વાસ શબ્દ વાપર્યો તેના ઉપર વ્યંગ કરીને પ્રભુ તેનો પ્રત્યુત્તર આપે છે.

(વિશ્વાસ (૧) ભરેસો, (૨) વિશેષશ્વાસ ચઢવો તે એમ બે અર્થ થાય છે એ ઉપરથી) “અરે, મારા કહ્યા વિના જ શ્રમને લીધે તમારા વિશ્વાસ (વિશેષશ્વાસ) ઉત્પન્ન થઈ રહ્યા છે. એક તો તમે પરમ સુકુમાર છો, માથે દહીંબની મટકીનો ભાર, અને આટલું બધું ચાલીને ગાવ્યા. વળી, અહીં કથારનાં ભિલાં રહ્યાં છે, વળી, આટલું બધું જોવા છો. એ બધા શ્રમને લીધે તમને વધુ શ્વાસ ચઢી જ રહ્યો છે. પછી મારે વિશ્વાસ ઉત્પન્ન કરવા કંઈ પણ શા માટે કરવું પડે !

(ગૃહભાવ-બે) રમણસુખ આપવાનું છે તેમાં પણ રમર શ્રમને લીધે વિશ્વાસ (વિશેષશ્વાસ)નો અનુભવ થવાનો જ છે. અત્યારે વચન ગોલીને વિશ્વાસ શા માટે કરાવું, કૃતિ દ્વારા જ કરાવીશ)

આધિક અધિક શું જોલો,
 કુલસીઓને વચન આમ, અંગ !
 ન સહન કરનારાં પણ,
 શું કહીએ અહીં નંદરાયના સુતને !

(૧૦૪) ટીકા : હે અમારા અંગરૂપ પ્રભુ, અમારા જેવી કુલીન સ્ત્રીઓ પ્રતિ આમ વધારે વધારે મર્યાદા વિરુદ્ધ કેમ જોલો છો ! અમે કોઈનાં આવાં વચન સહન ન કરીએ પણ તમે તો રાવના કુવર છો ! (અંદરનો આશય એ છે કે બીજાનાં આવાં વચન ન સાંભળીએ પણ તમે તો અમારા અંગ જેવા પ્રિય છો, અમારા લાડકવાયા રાજકુમાર છો એટલે તમારાં આવાં વચન પણ અમને પ્રિય લાગે છે, માટે જ સાંભળીએ છીએ.)

(૧૦૫) (અનુષ્ટુપ)
 “ગોકુલેશ, જવા ઘેર, સ્ત્રીઓને કેમ ઘો ન શું !”
 મુગાસિઓને વનમાં, અમારું દાન લાગતું.

(૧૦૫) ટીકા : હે ગોકુલેશ, આપ સ્ત્રીઓને ઘેર કેમ જવા દેતા નથી ? (રાવના સ્ત્રીઓ પ્રતિ આવી વર્તાવ ઉચિત નથી) (ગૃહ અર્થ) એ છે કે-આપ આ સ્ત્રીઓને કેમ જવા દેતા નથી. ન્યારે બીજી સ્ત્રીઓ ચાલી બંધ અને અંતરંગ સખી માત્ર રહે ત્યારે તમારા મનમાં આવે તેમ કરને-એટલા માટે “સ્ત્રીઓને” શબ્દ વાપર્યો છે. એ કે આ બધી તેમની જ સખીઓ છે, છતાં આ પ્રથમ સમાગમ હોવાથી લગ્નબંધન બનીને આમ કહે છે.

શ્રીકાકુરણ કહે છે કે અહીં વૃંદાવનમાં આ સ્ત્રીઓ ઉપર મુગનયનીઓ ઉપર જ દાન લાગે છે.

માટે હું કોઈને જવા દેવાનો નથી. બધું ગોકુલ માડું જ છે. એમાં અંતરંગ-બહિરંગ એવો કોઈ ભેદ નથી. બધાજ અનુષ્ટુપ-પાત્ર છે માટે કોઈને ઘેર મોકલવા યોગ્ય નથી. એની શંકાજ ન રાખવી.

ક્રીતંનમાં આજ ભાવ છે. યજ વૃંદાવન ગિરિ નદી, પશુ પછી સખ રંગ, ઇતનો કંઠા દુરાઈયે પ્યારી રાધા ! મેરે અંગ.

(૧૦૬) ન સાંભળ્યું તેવું આ દાન
 અહો ! તે કહી કહી લાગે !

પગમાં સિરમાં, મુજમાં,
 કે અહીં અન્ય, કંઠો જ અમોને તો.

(૧૦૬) ટીકા : હે પ્રભુ, આપે કહ્યું કે મુગનયની સ્ત્રીઓ ઉપર અમારું દાન લાગે છે, આપું તો અમે કદી સાંભળ્યું નથી. વેચવાની વસ્તુઓ ઉપર તો દાન લાગે છે પરંતુ એવો દાનનો પ્રકાર વળી કયો છે કે જે સ્ત્રીઓ ઉપર લાગે ! અને સ્ત્રીઓના કયાં કયાં અંગ ઉપર લાગે છે તે પણ કહો. પહેલાં તો તમે ગોરસતું દાન માગતા હતા, એ ગોરસ વંચવા જન્મમાં જે જે અંગે કામમાં લાગે છે તે અંગે ઉપર પણ દાન લાગે છે ? પગે ચાલીને માથે મટકી મૂકીને, હાથ વડે પકડીને, અમે જઈએ છીએ તેથી આ ત્રણે અંગે ઉપર તે પણ કહો (આંતરિક આશય ગોરસ ઈન્દ્રિયોનો રસ, પ્રથમ ગોરસનું દાન આપ્યું ઈન્દ્રિયોનો રસ માંગ્યો. તો એ પણ કહો કે કંઈ ઈન્દ્રિયોનો રસ જોઈએ છે ? તે કંઈ ઈન્દ્રિયો ઉપર તમારો હક લાગે છે ? કદાચ સર્વની સમક્ષ લગ્નબંધને લીધે ન કરી શકો તો પછી એકાન્તમાં બતાવજો.

પાલવે, ક'ચુક્રીએ જે અમારું શુભ અંતર, તેમાં, એમ વદી વીર સ્પર્શ જ ઉદત.

શ્રીલ કહે છે કે સાહીના પાલવ વડે અને ક'ચુક્રી વડે આશ્રાદિત કરેલું તમારું ઉર: સ્થલ છે લાં-(લાં માટું' દાન લાગે છે) આટલું કહીને જ ન આટકતાં, ઉરસાહપૂર્વક, અરે, બાણે છે ઉદત બનીને, એમના ઉર: સ્થલને સ્પર્શ કરી દીધા. (ચુઓ, અહીં દાન લાગે છે! એમ પ્રત્યક્ષ બતાવી દીધું.)

પ્રીતિ વહાં નીતિ નહીં, નીતિ વહાં નહિ પ્રીતિ. સ્થાનપ અરુ મહ છાક જિમિ, નહીં ઇકત કહું' રીતિ. (સતત્રૈયા-દયારામભઈ)

(નીતિમાં શાશુપથ અને પ્રીતિમાં મહોનમતતા શાશુપથ અને મદમસ્તપથ) એકત રહી શકતા નથી. પ્રીતિમાં ઉદ્દભટતવ (ઉદ્દતપથ) સહજ છે) વીર રસને સ્થાયીભાવ ઉત્સાહ છે. કહી બતાવવા કરતાં કરી બતાવવામાં વિશેષ ઉત્સાહની અપેક્ષા છે, માટે "વીર" શબ્દને પ્રયોગ થયો છે.

(૧૦૮) યુગ્મી છંદ

અરે, કુલવતી સ્ત્રીને, અકકતાં શું મર્મસ્થલે, ન ભીતિ ક'ઈ ધારતા, સહુ નિસારી "મર્મહને" સરોજનયની! કડું પરસ નારીઓને સદા, સખિ! સુજ કરે કદા વસન સેતુ ઓળંગિયા?

(૧૦૮) ટીકા: ભજવન વક્ષસ્થલમાં સ્પર્શ કરતાં, શ્રીચંદ્રાવલીલ કૃત્રિમ કાષ ધારણ કરીને

કહેવા લાગ્યા: અરે, કુલવતી સ્ત્રીઓને આમ મર્મસ્થલમાં સ્પર્શતાં તમને જરાકે ખીક નથી લાગતી? શું તમે બધી જ મર્મદા મુકી દીધી છે? (મર્મદારૂપી પુલને ઓળંગી ગયા છે?)

શ્રીલ કહે છે કે હે કમલનયની! આવી રીતે તે સદાયે સ્ત્રીઓને સ્પર્શ કરું જ છું? બ્યાં સ્પર્શ કર્યો લાં વસસહિત જ કર્યો છે. અર્થાત્ બારી રીતે તો વસ્ત્રો દૂર કરીને સર્વ મર્મસ્થાનેમાં સ્પર્શ કરવો બેઇએ તો જ બધી મર્મદા ઓળંગી કહેવાય. એમ પણ થયો. પરંતુ, તું તો અત્યારથી જ કહે છે કે બધી મર્મદા ઓળંગી ગયા છે! એ બરાબર નથી.

(૧૦૯) ગીતિ છંદ

કદા છતાં પણ જામલું વર્તન, ગજ સમ કરે અમર્મદા!
તુજ વચન હોય બેયું તેવી મારી કૃતિ દ્રિયુચ યાય!

(૧૦૯) ટીકા: પ્રભુને ઉત્તર સાંભળી, ચંદ્રાવલીલ કહે છે. "હું" ના ના કડું છું છતાં તમે તો મહોનમત હાથીની જેમ, બમલું અમર્મદા વર્તન કરી રહ્યા છો, આ શું?

[હાથી જ્યારે મદમસ્તબનીને વિહરે ત્યારે સરોવરની પાળોને પણ તોડી નામે છે. એવી રીતે તમે પણ મર્મદા રૂપી પાળને તોડીને વર્તી રહ્યા છો!]

ત્યારે શ્રીલ કહે છે કે એક તો મારે કરવું છે માટે કડું છું. ખીટું તારા કહેવા ઉપર કરવું પડે છે. એટલે આપોઆપ બમલું થઈ જાય છે.

(૧૧૦) ગીતિ છંદ

વચને ચતુર શિરોમણિ, નંદકુંવર બાણુતાં અમે તમને અતિ અનુચિત પણ અર્હિયાં, દધિતું દાન નથી જ સુશ્યું શ્રવણે.

(૧૧૦) ટીકા: પ્રભુની આ વચનચાતુરી બેઈને, ચંદ્રાવલીલ કહે છે તમે નંદકુંવર-ગોલવામાં તો ચતુરશિરોમણિ છો એ અમે બાણીએ છીએ (સાબના કુંવર એટલે ગોલવામાં ચતુર હોય જ) પરંતુ, જે કદિ પણ સાંભળ્યું નથી એવું ગોરસદાન લેવાનું તમારું કાર્ય તો અતિ અનુચિત છે.

(૧૧૧) વસંતલિલકા

શું નાળિયેર ફલ, અંબુજનેતર કિવા, પુંગીફલો શું ઇઈએ મૃગનાભિને વા, વા અંબોરોનું અહીં દાન શું લાગતું કે, અત્યંત ઉદ્દત મજેશ વહો તમે તો.

(૧૧૧) ટીકા: હે કમલ-નયન, શું અમે નાળિયેર સોપારી, કર્સ્તુરી કે રેશમી વસ્ત્રો લઈને જઈએ છીએ કે જેના ઉપર દાન (સાબના કર) લાગે, હે ગોકુલપાલક અમારી સાથે આવાં ઉદ્દત વચન બોલો છો તે શું તમને ઉચિત છે? ગોકુલના રક્ષક હોઈને તમારે તો નીતિમાર્ગે ચાલવું બેઈએ. આવી અનીતિ તમને ન શોભે!

(ચુદાર્થ એ છે કે તમે અમારા પાલક છો એટલે તમારી આજ્ઞાનું પાલન અમારે કરવું પડશે. વળી શૃંગરરસોચિત જે સામગ્રી બેઈએ તે

તો અમારી પાસે છે જ. નાની મોટી વયનાં ગોપીજનનાં રસોદીપક અંગેને સોપારીથી તથા શ્રીફલથી સચવે છે. તેના ઉપર (સ્તન ઉપર) મૃગમદલીપન કરેલું છે તે ઉપર રેશમી ક'ચુક્રી, સાહી, પણ ધારણ કરેલી છે. ગણાવેલી ચારે વસ્તુઓ; આપ તેનો અંગીકાર કરી શકો છો, આ તાત્પર્ય છે.)

(૧૧૨) ગોપીના ગોરસનું દાન, અને ગોપીઓ! શ્રદ્ધણ કરતા. કુલાંગનાઓને તો કે, તમ બાલક! આમ વચન દાતા?

(૧૧૨) ટીકા: ઉપરનું વચન સાંભળીને, પ્રભુ તેના ઉત્તર આપે તે પહેલાં, ગોપી વચમાં બોલી જાય છે કે "અમે તો ગોપીના ગોરસનું દાન જ લઈએ છીએ, ગોરસનો અર્થ ઇદ્રિયરસ પણ થાય છે. આ અર્થમાં લઈને ગોપીજન તેમને બતાવે છે" "હે ગોપ બાલકો, અમને કુલાંગનાઓને આનું વચન કહેનારા તમે કોણ? પ્રભુ તો ચાહે તેમ બોલો. પણ તમને અમારી સાથે આમ ગોલવાની શો અધિકાર છે?"

(૧૧૩) લલિત છંદ

વિપિનચરોને જલચરો કહે, અપિ! તું કેમ ઓ ગોપ અંગને! હજુ સુખી ન મેં બાણુ' આપનું. અદહ રૂપ આ આમ રમ્યશું.

(૧૧૩) ટીકા: હવે, ગોપીને ગોલવાની તક આપતાં, પ્રભુ ગોપીજનના વચનનો અર્થ બદલીને જુદોજ ઉત્તર આપે છે. ઉપર ગોપીએ કહ્યું કે

મવનત: કૈ? (તમે કાણુ?) એજ શબ્દોનો બીજા અર્થ થાય છે મવનત: તમે કે=પાણીમાં, અર્થાત તમે પાણીમાં છો. એ ઉપરથી પ્રભુ કહે છે કે તમે પાણીમાં રહેનારા છો, આ શુ? ?

પ્રભુની ચતુરાઈ સમજીને ગોપી ઉત્તર આપે છે કે અંહાહો! ત્યારે તો આપનું આણું ઉત્તર સ્વરૂપ હજુ સુધી મેં જાણ્યું જ નહોતું. હવે તમારા કહેવાથી જાણ્યું.

આમ કેમ કહ્યું? પ્રભુ ભક્તોના મનોરથાનુસાર, ભક્તોને પ્રેમથી બીજાની દેવા માટે, લીલારૂપી અમૃતબલસચ્ચદ્રમાં સ્થિતિ કરે છે. માટે ગોપીજન કહે છે કે તમારું આણું પ્રેમાદ્ર રસાદ્ર લીલાચુક્રા સ્વરૂપ છે તે તો મેં હજુ જાણ્યું નહોતું. તમે મારા કથનનો આલો અર્થ કર્યો ત્યારે જાણ્યું કે તમે આવા છો. લીલાસામિષમાંજ મગ્ન રહેનારા છો.

(૧૧૪) ઉપબતિ છંદ

નિમિત્ત શું ગોરસનું કયું કે
અમૃત્ય વસ્તુ કંઈ સુંદરી છે,
વક્ષસ્થલે સ્થિત શુપ્ત રાખે
મારા વિના અચનુ' માડું ના તે.

(૧૧૪) ટીકા: પ્રભુવાત બદલીને કહે છે, હે સુંદરી, તું ગોરસ વેચવાનું તો મિષ કરીને નીકળી છે. પરંતુ, કોઈક અમૃત્ય એવું બીજી વસ્તુઓ ઉર:સ્થલમાં છુપાવીને લઈ જાય છે તે શું મને આપવાની નથી? બીજા કોઈ પુરુષ માટે છે?

પ્રમત્ની મૂલ્યવાન વસ્તુનો અધિકારી તો રાજા છે, છુપાવીને લઈ જાય છે તેની શિક્ષા રૂપે મારે તે દાનના કર તરીકે લઈ લેવી પડશે.

(ભાવાર્થ એ કે હો ગોપીજન, તમે મારા સ્વરૂપને ન જાણો પશુ હું તમારા સ્વરૂપને જાણું છું. તમે વેદની શ્રુતિઓ છો, તમારું સર્વાંગ સર્વસ્વ મારે માટે જ છે. બીજા કોઈનું નથી, તેથી જો મારું છે તે હું જ લઈશ. ભલે તમે કંચુક્રીમાં છુપાવીને, મારાથી શુપ્ત રાખીને, મને છેતરવા માગતા હો.)

(૧૧૫) ગીતિ

હૃદયેશ વૃંદવનમાં અમે આવીએ છતાં પયોદાન,
કદાપિ નહીં સાંભળ્યું, કેમ તમેને અપાય તે આજ.

(૧૧૫) ટીકા: ગોપીજન કહે છે કે "મહારાજ! અમે નિત્ય વૃંદાવનમાં આવીએ છીએ, છતાં આણું દાન અમે કદાપિ સાંભળ્યું નથી તમે પયોદાન (કે પયોધર દાન) માગો છો તે કેમ કરીને (કેવી રીતે) અપાય એ જ અમને ખબર નથી.

(ગુહ્યાર્થ એ છે કે આજે આ નવીન જ અનુચ્છ હો. હજુ સુધી આવી કૃપા કોઈના ઉપર થઈ સાંભળી નથી, કે સાક્ષાત પ્રભુ હક કરીને, માર્ગીને અંગીકાર કરે! એ તો અમારાં ધન્યભાગ્ય છે, પરંતુ આણું દાન આપવામાં અમે અનભિષ્ટ (અભણ્યા) છીએ તો કેમ કરીને અપાય?

(૧૧૬) ઉપબતિ છંદ

અલ્યાર સુધી અવિચારી રીતે,
ન આપિયું આ બધું જ તે તે
અહીંશ હું દાન સરેરુહાક્ષિ!
આપીશ તું, લે ક્ષણવાર શાંતિ.

(૧૧૬) ટીકા: હે કમલાક્ષિ, આટલા દિવસ-પર્વત, ચોરીછૂપીથી, મારું દાન આપ્યા વિના

પદ. (બધામાં સુખ તું છે માટે પ્રથમ તો તારા જ ગોરસનું દાન હું લઈશ. મારા અનુચ્છની પ્રથમ અધિકારિણી, તું જ છે)

(૧૧૭) શિખરિણી છંદ

મઈ ગાયો આથી, પ્રખર ખુરીનાં ચિહ્ન વનમાં,
ન દેખાતાં, હા, હા, જપટ ગટ આવી અહીં બધા
સુભી મેંનાં વહાલાં વચન હરિએ ત્યાં સભય તો
કહ્યું હે હે ગોપો જઈ તરત ગોરક્ષુ કરે.

(૧૧૭) ટીકા: આ સમયે ભગવાંદેહાથી જ કેટલાક ગોપો આવીને કહેવા લાગ્યા કે-અરે, આપણી ગાયો ચરતી ચરતી એટલે બધે દૂર નીકળી ગઈ છે કે તેમની ખરીનાં ચિહ્ન પણ દેખાતાં નથી તમે જલદી ચાલો.

ગોપોનું આ વચન પ્રભુને પ્રિય લાગ્યું. તેમણે અણે કે ભય પામીને પોતાની પાસે જોલેલા ગોપોને કહ્યું "અરે તમે બધા જલદી જાઓ અને ગાયોને શોધીને લઈ આવો."

(૧૧૮) અનુષ્ટુપ

સર્વ ગોપો જતાં ઇંદ, થયું એમ જ પ્રેક્ષને,
અતિ પ્રસન્ન વદિયાં, અતિ પ્રેમાળ, નિર્ભય.

(૧૧૮) ટીકા: આમ કહેવાથી બધા જ ગોપો ગયા, એ ગોપીજનોને બહુ જ ગમી ગયું. પછી તો અત્યંત પ્રેમને લીધે નિર્ભય બનીને અતિશય હર્ષ પામીને, પ્રિયતમને અંગ કરતાં તેઓ કહેવા લાગ્યા.

(૧૧૯) તેટક છંદ

વિપરીત અહો! સગ્ની લલના,
સહુ આપણ ચોર મુઝો બનિયાં.
જનહીન વને પ્રમદા પકડે,
વર સાધુ ભુઝો અતિ આપ બને.

કેવી વિપરીત અવગી વાત કરે છે તે તો મુઝો. આપણે બધાં તો ચોર! અતે આ નિર્જન વનમાં, યુવાન સ્ત્રીઓને ચેરીને રોકી રાખનાર આ મોટા શાહુકાર-સાધુપુરુષ, કેવું આશ્ચર્ય!

કહેવાનું એ કે તમે અમને ચોર (ચોરીથી દાન આપ્યા વિના જનારા) કહો છો પરંતુ, અમે તો સમજન છીએ અને તમે યુનેગાર છો!

(આંતરિક ભાવના એ છે કે આપને નિવેદિત કર્યાં વિના અમે ગયાં એ ખરેખર ચોરીજ છે પરંતુ તમે સાધુ પુરુષ છો એટલે અમારી ચોરી વિષે બીજા કોઈ બંધે નહિ તેમ, અમને જ અને તે પણ વનમાં એનાતમાં ફહી રહ્યા છો, એ માટે તમારા ઉપકાર).

(૧૨૦) ગીતિ છંદ

વિપરીત સહુ તમારું,
ધર્મ અમારો ગણાય ન સુનયના!
તમથી દાન શકવું ચેત્ય,
અમેને જણાય તે તો હા!

(૧૨૦) ટીકા: ઉપર કહ્યું કે "પ્રભુ કેવું વિપરીત બોલે છે "એ વિપરીત" શબ્દ પકડીને સ્ત્રીજ ઉત્તર આપે છે કે" હં કમલનનીઓ, વિપરીત (વિપરીત રમણ) તો તમારું સ્ત્રીઓનું લક્ષણ છે, મારું નહીં, છતાં, તમારાં લક્ષણનું મારામાં આરોપણ કરે છે, તે યોગ્ય નથી.

સ્ત્રીજનાં આ વચન સાંભળી, ચતુરાઈ કરીને પ્રિયાજ બોલ્યાં કે "સારું ત્યારે, તમારા કથન અનુસાર" વિપરીત એ સ્ત્રીઓનું લક્ષણ છે તો દાન લેવા આપવાની બાબતમાં પણ વિપરીત કરવું પડશે. અમે દાન લેનારાં બનીએ અને તમે જ દાન આપો.

ધણાં તમે છે, પણ એકલો હું,
તેથી અનુકૂલ હવે કહું શું ?
હેવું - પડે દાન બલિષ્ઠને રે,
વદી ચૂમે એમ શશિયુગીને.

(૧૨૧) ટીકા : પ્રિયાણા ઉપરના પ્રસ્તાવને વધારી લેતાં શ્રીજી કહે છે કે "સાડું ત્યારે, તમારો એવો આગ્રહ છે કે 'મારે તમને દાન આપવું' તો હું દાન આપું. તમે તો ઘણાં છો, હું એકલો છું. તમે ઘણાં મળીને જબરદસ્તી કરો તો મારેજ દાન આપવું પડે! તં સિવાય કેવી રીતે ઇડયાય, પરંતુ મારી પાસે જે છે તે હું આપું છું. એમ જલદી જલદી મોલાતાંની સાથે જ પ્રિયતમે એ અદ્રશ્યોપીન અધરાસદાન દર્ષી દીધું. (રસાનમક પ્રભુપાસે જે લોકાનમક અધરાસદાન હતું તેવું જ કાન પડે દીધું. પોતે રસોવેદા' છે. એને પોતાના ત્રાવણ્યરસામૃતનું દાન કરે છે તેનું ચિત્ત હરણ કરી લે છે. અહીં પણ એમ જ કહ્યું.

(૧૨૨) અનુક્રુપ

કેમ આ કુલસ્ત્રીને, કેમ શૂન્ય અરણ્યમાં,
આમ આમ વદી એમ, નખ યુગ્મે-ઉરે દીધા.

(૧૨૩) ટીકા : આમ કરવાથી, તમણે કે કુપિત થયાં હોય તમા પ્રિયાણ કહેવા લાગ્યાં કે "અરે, આ નિર્જન વનમાં કુલસ્ત્રીને આવું કેમ કરે! કા ? ત્યારે "પ્રભુ કહેલે, આમ, આમ", એમ કહેતાં કંહતાં કરી એ પ્રમાણે કરવા લાગ્યા, ઉપરાંત ગઝ-ઝેરી કરતાં, પ્રિયાણના કંપાલ ઉપર તથા ઉર : સ્વલ ઉર પોતાનાં નખચિહ્ન પણ લગાડી દીધાં.

(૧૨૪) વચંતનિલકા

રે આપનાં યુગ્મથી રમ્ય યુગ્મધીદાર,
તાંબૂલ ચિહ્નિત ઘયાં શુભ ગાલ હાલ,
સૌન્દર્યગીમ નખચિહ્ન ઉરે જણાય,
તો શી રીતે નિન્, ઉદાર ! ગુહે જવાય ?

અગ, હે ઉદારવર, હવે હું ઘેર કેવી રીતે બંધ શકીશ ? આપના શ્રીયુગ્મની અદ્રશ્યુત યુગ્મ મારા યુગ્મ ઉપર લાગી ગઈ છે. મારા બંને કંપાલ ઉપર આપના ચર્વિત તાંબૂલ રસની રેખાઓ લાગી છે, માડું ઉરઃસ્થલ આપના નખચિહ્નોથી પરમ મુંઢર બની ગયું છે, અરેરે, આ બધી નિશાનીઓ લઈને હું મારે ઘેર કેવી રીતે બંધશ ! તં તો બતાવે.

(૧૨૪) શિખચિહ્નો

શુગ્રી તૂટી માલા, ક્યમ વલયમાં વિરલતા ?
યયું શાને મોડું, દધિકલશ છે કાં શું યયું આ ?
પૂછે આવું કોષિ યુજન સગીપિ પ્રિયજનો,
કહું શું સ્ત્રીઓને પરવશ તદા છવન-વિધિ.

(૧૨૪) ટીકા : હે પ્રિયતમ, ઘેર બાઉ ત્યારે, મને કોઈ મારાં વડીલોની સમક્ષ, અચાનક એવું પૂછી શકે કે "અરે, તારા હાર કેમ તૂટી ગયા ? કંઈય કયાં નંદવાઈ ગયાં ? આટલી બધી વાર કેમ લાગી ? હઠીની મટૂકી કયાં છે ? એનો શો ઉત્તર આપવો ? સ્ત્રીઓનું છવન પરવશ, વડીલોને અર્ધીન છે, પ્રભુ. પરત્રાજ છવનમાં સ્વસ્થક વિચરવાનું કયાંથી હોય ?

(૧૨૫) ગીતિ છંદ

રમણીઓનું છવન પરવશ છે
પણ નહિ ગોપીજનનું,
સુખ અર્ધીન જ તે તો, પ્રિય સખિ !
તુજને દીસે હવે ભય શું !

(૧૨૫) ટીકા : શ્રીજી કહે છે, સ્ત્રીઓનું છવન પરાર્ધીન છે એ વાત ખરી. પરંતુ ગોપીજનોનું છવન નહિ. તે તો અમને અર્ધીન છે, તેને વળી કોનો હર હોય ? હે પ્રિય સખી તું ગોપીજનોમાં ચિરોમણી થઈને ભય રાખે છે તે ઉચિત નથી.

ગોકુલ સકલ તમારે શરણુ,
એક વળી વિશેષ મન્વનિતા,
પરંતુ અહિં કેા તમને કંઈક કહે વચન,
અને એમ બહીતાં.

(૧૨૬) ટીકા : -પ્રિયાણ કહે છે "હે પ્રભુ સમગ્ર ગોકુલ તમારું જ છે તમારે જ શરણુ છે. તેમાંય ગોપીજન તો વિશેષ પ્રકારે, એટલે અમે તો આપને જ અર્ધીન છ. એ જો બુદ્ધિ કે અમે યુરુજનોથી ન ડરીએ પણ અમારા હૃદયમાં ખરેખરો ભય તો ભુલો જ છે, અને તે એ કે આ પ્રમંગ તાણી બંધને આપના સ્વરૂપને નહિ જાણનાર એવા કોઈ અમને આડું અવલું કહે એનો અમને હર છે. અમારે માટે ભલે કંઈ પણ આપના માટે કોઈ કંઈ પણ મોલે તે અમે કેમ સહન કરી શકીએ ? બસ, આજ પરમકાષ્ઠાપન રનેહ સિદ્ધાં છે કે પોતે પોતાના માટે ગયું સહન કરી શકે પણ પોતાના પ્રાણપ્રિયને કોઈ પ્રકારે શ્રમ થાય તે સહન ન કરી શકે. રનેહમાર્ગનું આ પ્રધાન લક્ષણ છે.

(સમગ્ર ગોકુલ તમારું જ છે, એમ કહ્યું, શ્રીમદ્ભાગવતમાં વચન છે કે તસ્માન્મહરણ મોઠં મન્નાથ મત્પરાયણમ ઇન્દ્રવૃષ્ટિ પ્રસંગે પ્રભુએ કહ્યું છે કે મત્ર મારે શરણુ છે, હું એનો નાથ છું, મત્ર મત્પરાયણુ હોવાથી હું જ એનું રક્ષણ કરીશ. ગોપીજનો વળી વિશેષ પ્રકારે પ્રભુનાં છે. શ્રીજીએ જેમને માટે પોતાનું અઠક્ષણીય પ્રગટ કર્યું છે, જે પ્રભુમાં જ આસક્ત છે, ઉદવલ જેવાએ જેમની ભરપૂર પ્રથાસા કરી છે, તે ગોપીજનો લોકિક સ્ત્રીઓ નથી, એ તો નિઃશંક વાત છે.

(૧૨૭) અનુક્રુપ
હરિના મનમાં પેઠી, વાણી પ્રેમવશ બન્યા,
ન બહાર જવા શકત અંતરે પ્રેમ પુરનાં.

કોઈ કોઈ કહી બધ્ય, અમને ગોપીવાદીઓ અમાર માટે અંગે કરતાં નથી." આ વાણી શ્રીજીના અંતરમાં એવી તો ભિતરી ગઈ કે આપ પ્રેમવશ બની ગયા; મૌન બની ગયા, કંઈપણ ઉત્તર આપી શક્યા નહિ. પ્રિયાણનો આવો અદ્રશ્યુત રનેહ એઈને પોતે અર્ધીન બની ગયા.

કોઈ કોઈ કહી બધ્ય, અમને ગોપીવાદીઓ અમાર માટે અંગે કરતાં નથી." આ વાણી શ્રીજીના અંતરમાં એવી તો ભિતરી ગઈ કે આપ પ્રેમવશ બની ગયા; મૌન બની ગયા, કંઈપણ ઉત્તર આપી શક્યા નહિ. પ્રિયાણનો આવો અદ્રશ્યુત રનેહ એઈને પોતે અર્ધીન બની ગયા.

શ્રીજીના હૃદયમાં પ્રિયાણ વિષયક રસનો જે પ્રેમપ્રવાહ વહી રહ્યો હતો તેમાં વાણીરૂપી રસ ઉમેરાતાં પ્રેમરસનું પૂર ચઢ્યું અને જેમ જલ-પ્રવાહમાં પહેલી વસ્તુ બહાર ન નીકળી શકે તેમ આ પ્રેમપ્રવાહમાં પહેલી વાણી બહાર નીકળવાને અસમર્થ બની ગઈ અર્થાત્ ભાવપરવશતાને લીધે પોતે મૌન બની ગયા. કંઈ પણ ઉત્તર આપી શક્યા નહિ.

વરોક્ષુર્ચનિ માં મવન્ના સત્ત્વિયઃ સત્પતિં
યથા ! તત્તુસાર પ્રિયાણને વશ બની રહ્યા.

બીજો ભાવ એ છે કે પ્રિયાણની પરમ પ્રેમ-ભાવનાને પ્રિયતમે પોતાના હૃદયમાં જ રાખી. પરમ પ્રેમસ્વરૂપ મન્વરતાઓના સ્વરૂપ તથા ભાવને બીજાઓની સમક્ષ પ્રભુ પ્રગટ કરતા નથી. માટે વાણી બહાર નીકળવાને અસમર્થ બની ગઈ એમ કહ્યું.

(૧૨૮) ગીતિ છંદ

નિમિત્ત કેમ વદો નહિ
કરો પ્રગટ ભાવ આપ કેમ નહિ
ન કોઈ પણ અહીં સુભૂતું, કેમ નાથ !
ભય અંતર થાય ગાહી !

(૧૨૮) ટીકા : -શ્રીપ્રિયાણ પ્રભુના ગતની અવસ્થા જાણી ગયાં અને કહેવા લાગ્યાં, "હે પ્રિય, આપ દાન લેવાનું નિમિત્ત મિષ બતાવીને ખરેખર મનમાં જે છે તે કેમ પ્રગટ કરતાં નથી ? આપને કોનો ભય છે ? અહીં બીજું તો કોઈ સાંભળનાર છે નહિ.

કૃશાંગિ ! દ્રવિણાંને, તુજ શિરે જ નિહાળવા ન હું આહા સમર્થ છે, વિપુલ ભારભારે અને અહીં, મધુરી ! મૂકેને ક્ષણ વિરામ લે સાથમાં કૃતાર્થે ગનશે. રૂપ મલયવાયુના વાયરા.

(૧૬૨)ટીકા :- ભકન પ્રભુનું મુખ વિચારે છે અને પ્રભુ ભકનનું મુખ વિચારે છે. સનેહ પરસ્પર જ પ્રેમ છે. શ્રીપ્રિયાજીએ પોતાના અંતરભાવ પ્રિય નમને જતાઓ. ઉપલક રીતે થતો દાનનો અમરો મરી ગયો. દેવે, પ્રિયતમના હૃદયનો પ્રેમ પ્રિયાજીનું મુખ વિચારવામાં પરિણમે છે. પોતે કહે છે કે-

હે કૃશાંગિ, તારા મસ્તક ઉપર આ દ્રવિણાંડોને ભાર છે તે હું ભેષ શકતો નથી. નું કૃશાંગી છે (કૃશ અંગવાળી પાનળી) અને તારા મસ્તક ઉપર આ દહીંની મટુકીને ભાર સ્વપ્નને કયાઈની ભૂલી નહીં છે. તને કેટલો શ્રમ પડતો હશે ! મારાથી દેવે આ સહન થતું નથી. માટે હે પ્રિયે મટુકી નીચે ઉતાર અને થોડીવાર નિશ્રાંતિ લે. આ મલયપર્વત ઉપરથી આવતો શીતલ મુખધુકન પવન મંદ મંદ વાઈ રહ્યો છે, તેને કૃતાર્થ કર. (તારો શ્રમ દૂર કરવાની યેવા કરીને એ પવન કૃતાર્થ-સાર્થક થશે, ધન્ય ગની જશે.)

ળીએ ભાવ એ કે, પ્રિયે તું આવી સ્વરૂપ છે, તારા ઉપર વળી ળીના સ્વની (ગોરસની) સ્થિતિ કેવી ? શકરભંજનના પ્રસંગમાં, શ્રીરુચોદિનીમાં વર્ણવ્યું છે કે ગાઢની નીંક અતિ સ્વરૂપ પ્રભુ પાદયા દન્યા અને ગાઢની ઉપર ગોરસ ભરેલાં પાત્રો મૂક્યાં દાનાં પરમ સ્વ ઉપર વળી ળીના સ્વની સ્થિતિ કેવી ! માટે પ્રભુએ ગાઢને ભાંગી નાંખ્યું.

અહીં પશુ સ્વરૂપ પ્રિયાજીની ઉપર ગોરસને ભાર સહન ન થવાથી, પ્રભુ આગળ ઉપર એ મટુકી ફોડી નાંખે.

કુમ્ભ મુદ આચોભી વધાર ઉદાર ઉરસ્થલે તમ વસન આ તેને તો, ના અગોથી સહાય રે, ક્ષણભર અમારા હસ્તોમાં કરે મજગોપીનાં નયન મીનના વારિ છે, નાથ આપ શોભાતા.

(૧૩૦)ટીકા :- શ્રીજીએ પ્રિયાજીનું મુખ વિચાર્યું પરંતુ શ્રીજી તો અલંકાર મુકુમાર છે, એ ભાવનાથી પ્રેરાઈને પ્રિયાજી કહે છે. મીઠું પ્રિયતમના આવરણરહિત વસ્ત્રસ્થલના સોદર્શનું નેત્રો દ્વારા પાન કરવાનું પશુ કહે છે. હે પુખ્તથી પશુ મુકોમળ અંગવાળા નાથ આપ મુંદર અને મુકુમાર છે. આપના વક્ષસ્થલ ઉપર જે વસ્ત્ર ધરેલું છે તેનો પશુ આપને ભાર લાગતો હશે. માટે એ વસ્ત્ર ઉતારીને થોડીવાર અમારા હાથમાં આપી દો. એમ માહત્વાને નીવ વહાલું લાગે તેવું અમને મનાવનાઓને આપનું સ્વરૂપ પ્રિય લાગે છે. જેમ મસ્ક પોતાની અને જલની વચ્ચે કોઈ અંતરાય આવે તો સહી ન શકે, તેમ અમારાં નેત્રરૂપી મીને, અમારાં નેત્રો આપના નિરાવરણ ઉરસ્થલને નિહાળવા આતુર છે. આલિંગના તાદ્રિના અમારા સકલ મનોરથો પૂર્ણ કરનાર આપનું આ અતિ ઉદાર વક્ષસ્થલ છે. એ સહજ મુંદર પશુ છે. વસ્ત્ર તેના સોદર્શને ઠાંકે છે. વાસ વ્હરોમય પીનમ્. પીત્તાવરે વેદરૂપી વસ્ત્રને દૂર કરીને, વેદમર્થોદાને અલગ કરીને, શુદ્ધ પુષ્ટિસ્વાભાવક સ્વરૂપે કરીને આપ અમને મુખદાન કરે, એ આંતરિક ભાવ છે.

સવર્ણસાંધ્યાથીમાં 'મિનત મનુ.' એવું પ્રભુનું વિશ્વપશુ છે. ત્યાં સુચોદિનીજમાં વર્ણવ્યું છે કે પ્રભુએ લોકવેદની મર્થોદા તોડીને ગોપીજનોના મનારથ પૂર્ણ કર્યાં.

આપ અતિ મુંદર એ ચત્રાકૃતિસ્ત્ર ગુણ તમન્નિત (ન્યાં સૌદર્ય) છે ત્યાં શુભ પશુ વસે છે.) એ ન્યાયે આપ જેવા મુંદર છે એવા સ્વમાર્ગના

જ્ઞાતા પશુ છે જ. માટે તેો અને આ વિનંતી કરીએ છીએ.

(૧૩૧) ભુજંગપ્રયાત છંદ

ઉતારી જ આ પાત્ર તારું દધિનું, સરોભાક્ષિ ! દે દાન તું શીખ માતું, તમારું મલેશ પ્રભુ વસ્ત્ર તેને, તમારી શું આજ્ઞા થકી આપું કોને ?

(૧૩૦) ટીકા :- આગળના શ્લોકમાં શ્રીપ્રિયાજીએ જે કહ્યું (વસ્ત્ર ઉતારી આપવાનું) તેનો ઉત્તર ન આપતાં, શ્રીજી તો પોતાની જ વાત કરી કહે છે કે 'હે કમલમંદની તું' આ તારી ગોરસની મટુકી ઉતાર અને માતું દાન જલદી આપ.' પરંતુ ચંદ્રામલીલા, શ્રીજીના વચનને ફેરવીને, પરિહાસમાં ભુલો જ અર્થ ઘટાવીને ઉત્તર આપે છે :- 'સ્વમ્ યત્ વાસઃ ઉતારય, કસ્યચિદ્ દેહિ ! સ્વં પરોમાજનં ચ મહામ્ દેહિ !' અર્થાત તું માતું વસ્ત્ર ઉતારી લે તે કેઈને આપ અને તારા ગોરસનું પાત્ર મને આપ'—આવો અર્થ ઉત્તરને પ્રિયાજી કહે છે કે : હે મલેશ, તમારી આજ્ઞાથી તમારું પીતાવર ઉતારીને કઈ સખીને આપું ? આ તમે શું કહે છે ? તમારું ગોલવાનું અલંકાર છે. તમારું વસ્ત્ર ળીતને આપું અને માતું ગોરસ પાત્ર તમને આપું ? આ શી વાત છે ? આમાં તો ત્રહલી પશુ ન થયો ? આ કેવી વિચિત્ર વાત કરો છે ?

(૧૩૨) ઉપભાતિ છંદ

શિરસ્થ ધારી દધિપાત્ર હસ્તે, પિશુ યતીપે, કહું વાત કોને ? 'ભાંગેજ આ' એમ મુખે વદતા, પાક્યું ધરામાં દધિ-પાત્રને ત્યાં.

(૧૩૨) ટીકા :- ઉપરની મસ્કરીની વાત સાંભ-

મસ્તક ઉપરથી મટુકી ઉતારી લે છે. આ ભેષ શ્રીપ્રિયાજી કહે છે કે 'અરે પ્રભુએ પોતે મારી મટુકી ઉતારી, હાથમાં લઈને મારી આંચે ભેભા છે. હવે મારે ફરિયાદ પશુ કોને કરવી ? કેવી રીતે કરવી ? એની પાસે ફરિયાદ કરી શકાય તે પોતે જ પારકું પાલવી લેવાનું કાર્ય કરી રહ્યા છે ! હવે કોને કહેવું ?' એમ કહેવામાં તો શ્રીજીએ 'બે, આ તારી મટુકી ફોડું છું' એમ ગોલતાં ગોલતાં, મટુકીને ભાંગ પર પછડીને ભાંગી નાખી.

રજોને પ્રિયાજી કરી મસ્તક ઉપર મૂકે, તેમને ભાર લાગે, પોતે સનેહવશ થઈ એ ભેષ શકે નહિ, એટલે મટુકી જ ફોડી નાખી. પ્રિયાજીને અત્યાર સુધી ક્રમ કરાવનાર એ મટુકી ઉપર પ્રિયતમને રીસ પશુ ચડી ક્ષેપ ને ! એની ભયે કે એ મટુકીને શિક્ષા કરી !

(૧૩૩) અખ્યસ છંદ

નેવે અંદ્રાવરીએ નિજ પ્રિયતમને, યુગમ હાથે પ્રહીને, ગોલ્યા એવું અપાટે, મજ જઈ સઘણું આપ વૃતાન્ત કહીને ! ન આવી શક્યો તે, તુજ મગીપ હવે, એમ ઔધુધુલ વાગી, સુણીને એક ચાતી ન અધરસને યોગ્ય એ તો મજે રી.

(૧૩૩) ટીકા :- પરંતુ પ્રિયાજીએ તો પોતાની મટુકી ફોડનાર ઉપર રીસ કરી. એમને જે હાથે પકડ્યા અને કેઈકે મગીને સંગોળીને કરેલા લાગ્યા, અહીં એ તું જલદી મજમાં (મામમો)ના. આપણને પચતી રહ્યા છે તેની ફરિયાદ કર. હવે તને રોકવાનો સ્વ શખીશ નહિ. મેં ગરાગર પકડ્યા છે. તું હવે મજમાં બ.

આ વચન સાંભળીને, પેલી ગોપી જતી રહી કેમકે એ ગોપી પ્રભુના અધરસની અધિકારિણી

દેખવેજ રાખવા માટે સાચે મોકલી હતી કે માગમાં શું કરે છે, ક્યાં નહ્ય છે. (વ.) તેથી અંતરાયરૂપ હતી. ભગવન્મિલનનો મનોરથ કરીને એ આવી ન હતી રમણાત્મક માગની એ અધિકારિણી ન હતી.

એનો જેવો અધિકાર તેવું જ ફલ તેને પ્રાપ્ત થાય છે. સમ વખતે અંતરજુદ્ધતાઓને પ્રભુ પાસે જતાં શિક્ષામાં આવી ત્યારે દેહ છોડીને ભગવદ્શીલામાં પ્રાપ્ત થઈ હતી, એમનો દેહ નહીં પણ આત્મા શીલાનો અધિકારી હતો. કેટલીક જાણીઓ સમ પછી ઘેર પાછી આવી છે અને કુરુક્ષેત્રમાં સિદ્ધિને પ્રાપ્ત થઈ છે. એ ઉપરની ઝાંખીઓ કરતાં મંદ અધિકારિણી છે, કષ્ટિપત્ની એમને ભોજન પછી પ્રભુએ કહ્યું કે હવે તમે ઘેર જાઓ. તેમણે એક વાર ના કહી પણ પછી માની ગયાં અને ઘેર ગયાં. એમનો એટલો અધિકાર હતો. માટે અધિકાર સુખ છે.

પ્રિયાણીએ શ્રીહરને ઉભય હસના વડે પકડ્યા તે સ્નેહચુકત સ્પર્શસુખ માટે જ હતું. પરંતુ પત્ની ગોપીઓ પાસે તે મિમાન્સા રજૂ કર્યું છે, પ્રિયાણીને એ અતુરાર્થ છે.

(૧૩૪) ઉપવ્રતન છંદ

મં ધારી એને કમવાશી કેવા મને ગણો છે; વદ તરવ તું આ, સમાનમાં નાગર ! શો વિરોધ, નીલિ તથા પીન હુકરમિત.

(૧૩૫) પ્રીતઃ પછી શ્રીહર, પાનાની પાસે જોભેલી કાંઈ આનંદજ અર્પીને પૂછે છે કે 'દેહ કમવાશી તું આશું કહે આ અંદાવલીએ મને પકડ્યા છે કે મેં એને પકડી છે ? મનિ શિક્ષાર્થ નત્ય એને પકડ્યા' કહેવાય તે એને પાતાના રૂપચુકાવવચ

મટ્ટકી ફોડીને રાષ્ટ્રી રાખી છે ? આ બેમાંથી ગડું શું છે ?

અતુર સખી, વચ્ચે રસ્તો કાઢતાં વાતને રસમય એક આપતાં મોલી કે 'તમારા બેમાં જુદાઈ છે કે આવો વિચાર કરવો પડે ? તમે જાને એક જ છે. અસ્થિવટ થઈને એકરૂપ બની ગયાં છે. જરા થે વિરોધ છે ક્યાં ? હા, જુદાઈ કરાવનાર મેં જ વસ્તુઓ છે ખરી ! આપનું પીતાંબર અને પ્રિયાણીની નીલી. આ બે જ જુદાઈ કરાવી રહ્યાં છે. આપ જ વિચારી જુઓ સર્વાંજ સંબંધમાં આ બે જુદાઈ કરાવનાર છે કે નહીં ?

(૧૩૫) અનુષ્ટુપ

તું જ મધ્યસ્થ થા આત્મિક, અમે ઉભય વાદીની, જ્યાં ન અંતર તાંતુને, ત્યાં મારી ક્યાં સ્થિતિ થતી ?

(૧૩૫) ટીકા - શ્રીહર એજ સખીને કહે છે, 'એમ નહીં, અમે તો વાદી-અતિવાદી છીએ. તું અમારી મધ્યસ્થ બન.' (મધ્યસ્થ વચમાં રહીને ન્યાય આપનારી.) આ સાંભળીને પરમ અતુર સખી, 'મધ્યસ્થના પદ પ્રમણે અર્થ' કરીને, રસમય ઉત્તર આપે છે 'અરેરે, એક તાંતુણ રહી શકે એટલી તો જગ્યા નથી, ત્યાં હું આખી તમારી મધ્યસ્થમાં કેવી રીતે સ્થિત થઈ શકું ?

(૧૩૬) ગીતિ છંદ

ગિત્ત થાય સજ્જની આ, તન તનુ અંગમ તબી મુલગ ! આરો, મન રંજન અતિ એનું કરો, શ્રીરંજ વગરની બનેલી છે.

(૧૩૬) ટીકા :- સખીનાં આ આતુર્યપૂર્ણ

કહેવા લાગ્યાં 'દે મુલગ, આ સખીને આપના અંગરંગની પ્રભળ કુંવળ થઈ છે. એ પૂરી ન થવાથી એનું મન બિન્ન થયું છે. એની શ્રીરંજ ખૂટી ગઈ છે. તે આપ એનું મનરંજન કરો. સખીએ પ્રિયાણીના આલિંગન ઉપર વ્યંગકટાક્ષ કર્યો, તેનો અર્થ પ્રિયાણીએ એવો ઘટલો કે એને પોતાને આવા સુખની ઈચ્છા થઈ છે. માટે એને આવી વાંત કંવવાની સહે છે. પોતાના મનમાં હોય તે બીજને દેખાય છે.

(૧૩૭) ગીતિ છંદ

તુજ સંગ આવ્યાનું ફલ સર્વિ પ્રગટ તું થયું અમને ? નિજ સખી બીજને પણ કરવા આંક ઉરમાં શું વાંછે ?

(૧૩૭) ટીકા : અતુર સખી આવે આરોપ સાંભળીને ખેસી રહે એવી ન હતી. એ મોલી, 'સખી, તારી સાથે આવ્યાનું આણું ફળ તું મને આપે છે ? (સારી સોળત બણીને હું તારી સાથે આવી અને તું તો આવી નીકળી તે પણ ટીક, પરંતુ તું બીજને પણ તારા જેવી કરવા ઈચ્છે છે ?

(૩૬૯) એ કે પ્રિયાણીના વચનથી સખી મનમાં તો પ્રસન્ન છે. મોટા ભકતના સંગ દ્વારા જ સ્વાત્મક પૂર્ણ પુરુષોત્તમનું સુખ પ્રાપ્ત થાય છે એ મનમાં ગણે છે, પણ બીજ સમયથી મનોભાવને છુપાવવા તથા આવા રસાદ્ર વચનો દ્વારા રસ વૃદ્ધિ કરવા, આ રીતે સુખથી કહી બતાવે છે.

(૧૩૮ થી ૧૪૦) અનુષ્ટુપ છંદ

તેવે હૃથેં નિજ સ્પર્શ થવા કર પ્રસારતા તે પ્રત્યે નવ પ્રેમાદ્રવદને વહતાં પ્રિય.

(૧૩૮ થી ૧૪૦) પ્રમ-ગની

પોતાનો શ્રીહર પ્રસાર્યો ત્યારે ગોપીજનોના રેશમી ફૂલા ભરેલા મનોહર પાલવ પ્રિયાણીની કડિના નીચેના ભાગ આગળ આવી રહેલા છે તેના ઉપર નખચંદ્રનો પ્રકાશ પડવાથી વિરંજ્ય શીતિમાન લાગે છે.

કામદેવને વસવાવાના વ્રત્તાશુદ્ધ આગળ જાગે છે પુષ્પોતું તોશમુ માંધું દોય એવો એ પાસળ દેખાય છે.

(૧૪૧) હરિગીત છંદ

મદને મધુર સુખચંદ્ર અંચલ તારસા લોચન લાગે, મુગનયનીઓને મન મનોહર કલાકરમ્ય અવલોકવ, નવ પ્રેમ આદ્ર મીચે રહ કંઈ નયનાંયુએએ, એ બધાં, નિહાળનાં અનિષેપથી અતિ સ્થિર અખળાઓ રહ્યાં.

(૧૪૧) ટીકા : શ્રીહરનો સુખચંદ્ર કામ-દેવના જેવો મનોહર (કામભાવથી સુકત શોભી રહેલ છે, નેત્રની કીકીઓ ચપલ બની રહી છે. (સ્ખલતાપૂર્વક પ્રિયાણીના અંગે ઉપર ફેરી રહી છે.) શ્રીહર કોઈક સ્વચ્છ સિનથી (કામરોગનાં સ્થન હાસ્યથી) તેમની સામું જોઈ રહ્યા છે.

આનું પ્રિયનું સ્વરૂપ મુગનયનીઓને અપ્સ-મનોહર લાગે છે. આ મનોહર સ્વરૂપ નીરસનાં એમનું મન હરાર્થ ગયું છે. એમના નેત્રમાં કોઈક નવીન પ્રેમરસ અજકી રહ્યો છે. ભાવવશ થઈ, અર્ધો મિઝાપેશા 'નવકમલ વડે મટકું' પણ માર્યાં સિવાય એ અખલાઓ પ્રિયનમની સામે ધારી ધારીને એકીરસે જોતાં ત્યાં જ સ્થિર થઈ ગયાં છે. વતણે કે ચિત્રમાં ચીનરેલી પૂતળીઓ ન હોય ! (આવી કાવ્યસાચનો 'સ્ત'ભ' નામનો આગિત્ત ભાવ વર્ણવ્યો છે.)

(૧૪૦) ગીતિ

લોકત્રયમાં પણ કે સુભગા નારી,
ગને ન આતિ સુગ્ધા !

(૧૪૨) ઠીકા : હે સખી તુંજ કહે કે ત્રણે
લોકમાં એવી કઈ સુભગા નારી હશે કે જે શ્રીવજ્ર-
વરનું આયુ' કામ-મનોહર સુગંધકલ નિહાળીને,
એમનાં સચુકત વચનો કાવણ કરીને, અત્યંત સુગ્ધ
ન બની નહય ! અર્થાત કોઈજ નહિ. ત્રણે લોકમાં
એવી કોઈ સચિત સુવતી હોઈ શકે જ નહિ કે જે
આવા સ્વરૂપ ઉપર મુગ્ધ ન થઈ નહય !

(૧૪૩) શાહુલવિકીરિત છંદ

સાધી બ્રહ્મનું કટાક્ષશસ્ત્રી, ભાગી ગઈ પૂર્વથી,
તંથી દૂર જવાય ના કયમ કરી. નિહાળી પાછી ફરી
સેનાનો લક્ષ્મી અનંગ વીરની, શું ગોપીઓ તે સમં
વાંકા કંઠ કરી જુએ જ હરિને અધીન સર્વે કરે.

(૧૪૩) ઠીકા : હે સખી, એ ગોપીઓ તે વખતે
કેવી દેખાય છે ? ત્રણે કે કામદેવની સેના ન હોય !
કામદેવ સ્ત્રીઓ દ્વારા પુરુષ ઉપર વિજય મેળવે
છે માટે સ્ત્રીયમૂલ્ય એજ કામદેવની સેનાને લઈને
કાઠવા આવ્યો. શ્રીકૃષ્ણએ બ્રમરૂપી ધનુષ્યમાં
કટાક્ષપીણાએ ચલાવીને મારતાં એ સેના ભાગી
ગઈ હોય પણ એ બાણોથી ગતવા કોઈ ઉપાય
નહિ હોવાથી ત્રણે કે સેના પાછી ફરી હોય અને
માથું યુદ્ધ આપવા માટે ત્રણે વાંકા કંઠ કરીને
(પરાગર નાટીને) પોતાને અધીન કરી લીધા હોય
એવી એ ગોપીઓ એ સમયે દેખાય છે.

(૧) પ્રથમ પ્રભુના કટાક્ષબાણોથી સ્ત્રીઓ
મોહિત થયેલી છે. હારેલી છે (૨) જેમ જીવનાર
પણ હાતનારી સેનાને પીછા પકડે તેને છેડે નહિ
તેમ આ સેના ભાગી જવા છતાં ગતવાના માર્ગ
એતી નથી કેમકે પ્રભુના કટાક્ષબાણ એમના
અંતઃપુરમાં ખૂંટી રહ્યાં છે તેથી તે પાછી ફરે છે.

બાણે વડ પ્રભુને જીતી લે છે અને પોતાને
અધીન બનાવી દે છે. આશ્લોક “સુસ્ત સંગ્રામ”
શબ્દની સાથેકતા સૂચવે છે.

(૧૪૪) ગીતિ છંદ

તે સમયે વ્રજવરનું પ્રગટ નિરીક્ષણ
અહિ ! પ્રિયાબનમાં
મોહન-માનમિશ્રિત અવનવા પ્રેમને
પૂણું પ્રગટ કરતા.

સખી તે સમયે પ્રિયતમ ગોપીજનો પ્રતિ
એવું ચિતવન કર્યું (કટાક્ષયુક્ત દષ્ટિપાત કર્યો)
કે જેને લીધે ગોપીજનોના મનમાં મોહ અને
માનમિશ્રિત કોઈક અનિવચનીય ભાવ પ્રગટ થયો.

(પ્રિયની ચિતવનથી ગોપીજનોના હૃદયમાં
એવો સંમોહ પ્રગટ થયો કે જેથી એ પ્રભુને
મામા મોહિત કરી શકી. એ પ્રભુને જ અનુગ્રહ
છે નહિ તે પ્રભુને મોહિત કરવાનું સામર્થ્ય
લક્ષ્યમાં ક્યાંથી હોય ? વળી માન પ્રગટ થયું
કે પ્રિયતમ અમારી સામે આવા અગ્રાધારણ
પ્રેમથી નેહી રહ્યા છે, અમારા અહોભાવ છે !
અને પછી તે ગોપીઓ ભગવદ્દરૂપ બની ગઈ.

(૧૪૫) ગીતિ

નીલ સુધારણ આગર પર,
ગોપીજન દગ સરિતા ભજતાં,
પ્રભુ સ્વરૂપ થયાથી ઐક્ય પામતાં
થયાં શું ! તેહ તલા.

(૧૪૫) ગોપીઓ ભગવદ્દરૂપ બની ગઈ, એ કેવી
રીતે ! જેમ ગંગાજી સમુદ્રમાં મળી ન્ય ત્યારે નામ
અને રૂપ બનેને બદલાઈ ન્ય છે. ત્યાં એ ગંગા
કહેવાતી નથી અને શ્વેત જલ સ્થામ બની ન્ય છે.
એવી રીતે અહીં સ્થામ અશ્વેત સમુદ્રરૂપ

સ્વરૂપમાં ગોપીજનોના સ્થામ નેવના કટાક્ષા એક
જ વર્ણના હોવાથી એકરૂપ બની ગયાં અને તેનું
આરૂપ સિદ્ધ થયું નેવના કટાક્ષા દ્વારા ગોપીજનો
ની ચિત્તવૃત્તિ પણ પ્રભુના સ્વરૂપમાં એકરૂપ
બની ગઈ, અલેક સિદ્ધ થયે, પોતાના સ્વરૂપને જ
ભૂલી ગઈ, પ્રભુમાં જ લીન થઈ ગઈ. આજ પ્રેમ-
લક્ષણ ભક્તિમાર્ગની માનસી સેવા ચેતસ્તત્પ્રવર્ણ
સેવા ગોપીજનોને સિદ્ધ હતી. તાનાવિદન.....
(ભા. એ. સ્કંધ) (અર્થ : હે ઉદ્ભવ મારામાં જ
છે એવી એ ગોપીઓ, પોતાના ઈહલોક અને
પરલોકને પણ ભૂલી ગઈ છે, જેવું યોગીનું સમાધિ
દશામાં થાય છે. જેવું નદીનું નામ રૂપ સમુદ્રમાં
બદલાઈ ન્ય છે એવું ગોપીજનોનું તત્ત્વમયતા
થવાથી થયું છે.

દ્યમેવ પરામર્શિત માનસીરમિધીયાં ।
પતસ્તિસ્સ્વી યુનઃ કિંચિન્કર્તવ્યં નામશિષ્યને ॥

આજ પરાભક્તિ માનસીના પ્રથમ અધિકારી
ગોપીજનો છે માટે જ પુષ્ટિમાર્ગે ગોપિકાઃ સુરુઃ
કહેવામાં આવ્યું. આ કારણે જ ઉદ્ભવજીએ ગોપી-
જનોની ચરણરચને વંદન કર્યું છે, અર્થાત્ એમનું
ચરુપણું સ્વીકાર્યું છે નહિતર સ્વપ્રિય પુરુષ અહીં-
રણી સીઓને વંદન કરે બરા ?

(૧૪૬) વચંતનલકા

આ સુગ્ધ હું મુગ પરે હરિ ! વારી નાઉં,
છેડા જ પાલવ, વિલગ પંથે અંધોને,
હે અંગ ! આપ મન માન્યું દર્શા તે જ
ઉલ્લાંચી ગેહપનિને અતિ યત્નથી હું.

(૧૪૬) હવે પ્રિયાજી પ્રેમપ્રમાધિમાંથી ન્યયા
અને કહેવા લાગ્યાં. હે હરિ આપના મુંદર સુગ્ધ મુગ
ઉપર હું વારી બઢિ, મારો આપના ન્યોગ્રવર કરી
દઉં પણ હવે મારો પાલવ છેડો. માર્ગમાં ઘણું
વિલગ થઈ ગયો. અંગ આપનું મનમાન્ડું જ

જેવું તે પણ આપના કામદેવના કામદેવના
પાલવ છેડો.

જેની લાંગા સમયથી ચાહતા હોય તે વસ્તુ
મળે ત્યારે બધું હરખમાં ન્યોગ્રવર કરવાની વૃત્તિ
થઈ આવે છે. (જેમ નંદરાયજીએ પુનઃનંદ સમયે
મન મૂકીને દાન આપ્યા હતાં તેમ અહીં પરમ
હૃલેલ પ્રભુ જેવના ગિત્તનની (મારવત કલ્પના
આગમન સુધી) લાંગા સમય સુધી આતુરતા હતી.
તે પ્રાસ થતાં ગોપીજનો પોતાના આત્મા સહિત
અર્ચસ્વ ન્યોગ્રવર કરે છે. આજ સર્વસમર્પણની
લાવના ! ગોપીજનોનું જે કંઈ છે તે સર્વ પ્રભુનું
જ છે એ સ્મરિત થાય છે. સ્વપનિ તે દેહના પતિ
કે દેહની સરખામણીમાં આત્મા મુગ્ધ છે. આત્મા.
ના પતિ માટે લોકિક પનિનું ઉત્ક્રમણ પણ ન્યાં
ધર્મરૂપ બની ન્ય છે એવો આ પરમ અલોકીક
ભાવ છે. આવા ભાવ દ્રઢ થવા માટે અનિપ્રયત્નથી
એમ કહ્યું છે.

(૧૪૭) ઉપવર્તાન છંદ

એવું વંદના કરપદ્મદેથી
શ્દિ પિયુ-વિયુકને મુગાશી
સંકાય હરને કર્યા થયું તે
કટાક્ષથી ત્યાર પછી વદ્યા નં.

૧૪૭. હં પ્રિય ‘દું’ આપનું મનમાન્ડું આપીશ,
એમ કહેતાં કહેતાં એ મુગાશીએ પોતાના મુકેગળી
દરપદ્મવેથી પ્રિયતમની હૃદયની પકડી પળી
પાનાના હરના ત્યાંથી લઈ લીધી અને એ પોતાના
હરને જ પોતે મૂલી કરી પોતાના મનના આશય
સૂચવવા આ પ્રમાણે કર્યું. પ્રિયતમને સૂચવ્યું કે
દું આપના શ્રીમુગને ચમવા વાહું છું. પ્રિયતમ
પણ એમના મનોભાવ સમજી ગયા

(૧૪૮) માસિની છંદ

આભિવર્ણન અમારું કંચુકીમાં લગાણું

(વિલસુ) ફર વસ્તુ ને અને સેષ આસુ
ફર સખી ! વળી આવું વસ્તુ સાડું થ નાડું.

(૧૪૮) અને શ્રીજી કહેવા લાગ્યા કે હે સખી
મારી અભિલાષા જે વસ્તુમાં છે તે તે કંચુક્રીમાં
કુપાલી સખી છે તે અતિ રસયુક્ત છે. મહાનાનામાં
ને ગિલ્લકુમથી પણ ચરી બચ તેવી છે, એ વસ્તુ
મને આપ. તે વચન આપ્યું છે કે તમારું મન-
નાયું હું જરૂર આપીશ" તો હે સખી તારું
વચન શત્ય કર. તારા આ પાલવને હવે વચ્ચેથી
ફર કરી દે.

(૧૪૯) ઉપનતિ

આવું વત્રી પાલવ જોયતા તે
કાંઈયું નિહાળી નિજવસ્તુ તેવે
વૃથા કરી રીસ વડાં મુજોળી
ખીનાં શું બાણે નિજબંધુઓથી.

(૧૪૯) પાલવને ફર કરવા કહ્યું તો પાડું પણ પોને
નણુના જ હતા કે લગ્નવયસ પ્રિયાજી પાતાની
મંજો પાલવને ફર કરી શકે જ નહિ. એટલે આવું
ગોલવાળી સાથે જ પોને જ તેમને પાલવ જોયેથી.
પ્રિયાજી તેને પકડી રાખવા ત્રયા એટલે પાલવ
કાંઈયો આ બોધને રીસ કરીને વડીલોનાં ડર લાગ્યો
હોય એમ કહેવા લાગ્યાં. (મનમાં તે પ્રચન્નતા
ઉપરથી દેખાડવાની રીસ.)

(૧૫૦) નીલી જ એઆ નવી જ અંગ !
અંજે કરી લગ્ન, ગણી મુલગ્ન
ઉમંગથી તે હમણાં તમેએ
આવી કરી ઘેર જાઉં શી રીતે ?

હે અંગ, આને. મુન્દર સુહૃત બાણીને કેટલા
ઉમંગથી નવીન નીલી, નવું જ વસ્તુ, હું અંગ
ઉપર ધાણું કરીને આવેલી, તે તમે આવું કરી
શીલું ! કાઠી નાંખ્યું ! અંજે, હવે હું ઘેર કેવી
રીતે જઈશ.

(નિલે ચોપાલ સોમ દિન નીકે (સુરધાસલ)
આને પ્રભુને મળવાનું હતું એ જ મુન્દર સુહૃત.)

(૧૫૧) પૃથ્વી છંદ

કહે "વસન કેમ આ તુજતણું જ કાંઈયું દિલે ?"
શું ઉતર વહ ! કંઈ મિપ નથી, ગુહે બે પૂછે,
મુશુપ નહિ આ બને, અરસ ! કેમ આવું ક્યું ?
"વચ્ચેશકુંવરે ક્યું મિપ બતાવજે આ નયું."

(૧૫૧) ઘેર જાઉં અને સાસુ નણું વગેરે પૂછે કે
"આ નારી સાડીને પાલવ કેમ કાંઈયો ?" તો હું
શો જવાબ આપીશ ? મને કોઈ બહાનું કાઢવાનું
સૂઝતું નથી. આપણું આ મિલન સારી રીતે
શુભ રહેતું બોધતું હતું પણ હવે એમ નહીં બને.
માડું થયાતું તો ગમે તે બહાનું કાઢત ! અરેરે,
આંખે આ શું ક્યું ? આ સાંભળી શ્રીજી ઉતર
આંખે છે કે સખી તું એમ જ કહી દેજે કે
શીનંદરામજીના પુત્રનું આ કામ છે !

(૧૫૨) ગીતિ છંદ

નિજ જીવન જતાં પણ
નહિ લડે તમ નામ, નાથ ! કોઈ સંભે
કેઈ સમય પણ ન કૃપણ,
સ્વક્રીય સર્વસ્વનો પ્રકાશ કરે.

હે નાથ, પ્રાણુ બચ તે પણ હું આપનું નામ
પ્રગટ ન કરું ! કૃપણ પોતાનું સર્વસ્વ એવા
ધનનો કહી પ્રકાશ કરે અરે ! કૃપણના ધન
જેવા આપ મને પ્રિય છે, સર્વસ્વ છે, આપનું
નામ તે કતીપણ દર્શા નહિ.

(૧૫૩) વસંતતિલક

આવું કહો ભય ધરે ગણી તે અમાડું,
લે વસ્તુ, આપ મુજને અલિ વસ્તુ તારું,
આ સુકિત મગ્ન સતિનાં અલિ

(૧૫૩) શ્રીજી કહે છે કે તારું વસ્તુ કાંઈવાથી
તને ભય લાગતો હોય તો મારું વસ્તુ તું દે
(પહેરી લે) અને તારું કાંઈયું વસ્તુ મને પહેરાવી દે.

શ્રીપ્રિયાજી કહે છે, આવાં વસ્તુ પલટવાનો આ
સમય નથી. હજુ તો પ્રથમ મિલનનો મુગ્ધભાવ
છે. વળી અમે તો ગામડાની જોગીભાળી સ્ત્રીઓ
છીએ. સતિરમણમાં મુગ્ધ બનેલી નગરની કામિ-
નીઓ સ્વપરવશ બને ને આવો પરસ્પર વસ્તુ
પલટો કરી શકે પણ આપના બરાબર પરિચયમાં
આવીશું ત્યારે આવું કરીશું ! આપારે નહિ.

(૧૫૪) વસંતતિલક

ના હું વહું અનય, જો અલિ આ દિયિતું,
કહે મૂલ્ય, "પાલવ ન મૂલ્ય ગણાય એવું"
ને હોય આશ્રહ મુમૂલ્ય તમેજ યોગ્ય,
આપો મને, મહન-સોહન દિવ્યકાથ !"

(૧૫૪) હવે શ્રીજી કહે છે કે હે સખી,
તને એમ લાગતું હોય કે હું તારું કહી, દાનમાં
(કર તરીકે) લઉં એ અન્યથ છે તો મારે
અન્યાય કરવો નથી. ચાલ, તારા કહીનું જે મૂલ્ય
હોય તે મને કહી દે, હું તેનું મૂલ્ય આપીને લઉં,
પણ મારે તારું ગોરસ તો લેવું જ છે. ત્યારે
પ્રિયાજી કહે છે કે હે સ્મર-મદનનાં મારું ગોરસ
તો અમૂલ્ય છે, છતાં મૂલ્ય આપીને લેવાનો આશ્રહ
હોય તો તમને યોગ્ય લાગે તેનું મૂલ્ય તમે આપો.
(ગણી) શું મૂલ્ય આપવું તેના સ્પષ્ટ ઉદ્દેશ્ય
કરતા નથી, છતાં જે સંજોગોન કરે છે તેમાંજ
ગભિત નિદેશ આવી બચ છે. "સ્મર-મદનનાં"
(મદન-મોહન દિવ્યકાથ) એટલે કામરસ પ્રગટ
થવાથી જેમનું અંગ મોહક બની જાયું છે એવા
આ સંજોગોન દ્વારા મૂલ્યમાં સ્વરૂપદાન (અંગ-
સંગ-મુખ) માગી લે છે. લગ્નવયસનાં સ્ત્રીધે

(૧૫૫) ઉપનતિ

હાસકિતું દાન શુભાંગિ ! દેનાં
માતાથી ખીતો, પણ યોગ્ય તો આ,
લે મૂલ્ય આપું કહી એમ ચુમે,
થયું તને પૂણું ન કે કહે તે.

(૧૫૫) શ્રીજી કહે છે કે હે સુભવ અંગવાળી,
તારાં ગોરસ અતિ મૂલ્યવાન છે પરંતુ એમ કરતાં
મને તને અનુરૂપ (યોગ્ય) એવું આ બીજું જ
મૂલ્ય આપું છું તે લે, એમ કહેતાં કહેતાં જ
યુગનંદાન હવે લીધું. અને પૂછવા લાગ્યા કે ગોલ
હવે તારા ગોરસનું મૂલ્ય પૂરું થયું કે નહિ ?
(ને ગાત્રી હોમ તો પૂરું કરું.)

(૧૫૬) ગીતિ છંદ

વચ્ચેશકુંમાર કમલ સમ કોમલ,
તમ કૃતિ આ સો સારી,
વચન તબે જોશે જન કોઈ,
રાજપથ પર તમ ગણિહારી.

(૧૫૬) શ્રી પ્રિયાજી કહે છે. "કમલ સમા
કુકુમારે હે વચ્ચેશકુંમાર ! આપ જે કરો તે
સર્વ સાડું જ લેાય પરંતુ આ રસનો છે: કોઈ
માર્ગે વચ્ચેશકુંમારે: એ શું સાડું છે ? મારા
પાલવ બાંધી દેવા.

ઉપરના પ્રિયતમના પ્રદર્શનો ગભિત જવાબ
આમાં સંકેત છે. શું ગાત્રી સ્ત્રી તે લગ્નવયસનાથી
સ્પષ્ટ કરી શકતા નથી ? પરંતુ માર્ગ મંથે આમ
કરવું ઉચિત નથી એમ કહીને ગોરસના ગાત્રી
સંકેત મૂલ્ય તરીકે, ઔષ્ણિક યુગની અભિલાષા,
ગભિત રીતે વચ્ચા કરે છે. સ્વચાગ્રાનો સિદ્ધાંત
છે કે યુગ્મરિતે જ સ્વચાગ્રા પ્રાપ્ત થાય છે.

(૧૫૭) શિખરિણી

વિવેકિની બીજી અવાજ મનેને યાચર ન જે, પુષ્ટિ એ તું તેને, ત્વચ નિવચનોનો ભય હવે.

(૧૫૭) હવે નિકુંજવર્ણન કરતાં શ્રીજી કહે છે કે કમલલોચની, અહીં (નિકટમાંજ) અનેક કુંજ-નિકુંજો આવેલી છે. ત્યાં વિવિધ પ્રકારના મનોહર લાગનાં જાતબનાં પીવેલાં પુષ્પો, તેમાંથી નીકળતી ઉત્તમ ગૌરભથી ઉત્તમ ગનેલાં બ્રમરો, ગાવું બધું તું જો. અર્થાત્ જોયા તો નહિ પણ નાંભળવાયે ન મળે, અરે કર્ણાભામાં પણ ન આવે એવું બધું તું આનંદપૂર્વક નિહાળ. આમ કરતાં નું સ્વજનો વડીલોનો ભય સખીશ નહિ. (મારી પેછાથી આ થાય છે એટલે તને તેજો કશું જી શકશે નહિ.)

(૧૫૮) ગીનિ છંદ

ગાણુ પાંજરે છાનું,
રજી રતિપાનું સ્વભાર અર્ધસ્વ,
કૃત્યમમય નહિ લતાગુહ,
આ માનું મુગનયની! એમ.

(૧૫૮) હે પ્રિયે પુષ્પાથી છવયેહું લતાગુહ ત્થી અણે એના રક્ષણ માટે પાતાના ગાણુંનું વંજું ક્રમહેવે ગનાવ્યું છે. પુષ્પો એ ક્રમહેવનાં ગણ છે.

ભાવ એ છે કે નિકુંજ આરે ગાણથી પુષ્પાથી આવેલી છે (લતાગુહ નિકુંજ પ્રતિ શ્રી પ્રિયા-જને આકર્ષ્યા માટે, આ બધું નિરૂપણ થઈ ચું છે. (અપભ્રંજિ અને ઉપેક્ષા અલકાર)

(૧૫૯) પૃથ્વીછંદ

નિકુંજપુરમાં અહીં મદનસય, ધૈર્યોદિકે પુમત્રી સહ વાયુ કેકિલ સંગથી જેને સત્યે, કરને સચ્ચે, નિ-

(૧૫૯) હવે બીજી રૂપક આપીને નિકુંજસ્વરૂપ વર્ણવે છે. કહે છે કે નિકુંજનગરમાં કામહેવ નામનો રાજા અત્યારે રાજ્ય કરી રહ્યો છે. વાયુદેવ (પવન) એનો મંત્રી છે. તેનામાં ધૈર્ય વાહી ચુષ્ણા છે. ધૈર્ય (૧) હિંમત (૨) ધીરા પવનમાં ધીનપણ્યોનો મંદ સગીર ઉતમ ગણાય. ક્રોધવ, મોર વગેરે પક્ષીઓ ગંડીજનો રાજા ક્રમહેવની સ્તુતિ કરે છે, શોભિત કમલો ઉપરનાં ઉત્તમ બ્રમરોનાં યુથ તેનો યથ ગાર્ધ રહ્યાં છે, એવાં કામનો મુષ્ટિત ત્યાં જ્ય પાગી રહ્યો છે. પરંતુ કયાં સુધી! હે પ્રિયે તારાં કટાક્ષરૂપી ગાણો ત્યાં સુધી છૂટવા માટે નહિ ત્યાં સુધી. તારા કટાક્ષગાણોથી એ કામહેવ હારી જવાનો છે. (ભાવાર્થ) એકે નિકુંજમાં મંદ સગીર વર્ધ રહ્યો છે. પક્ષીઓને કલસવ અને બ્રમરોનો યુગ્લ સ્વ થઈ રહ્યો છે. આ બધું કામોદીપક છે પરંતુ તારાં કટાક્ષશર આ બધા કરતાં અધિક સ્તોત્રીપક છે. શ્રી પ્રિયાજીને નિકુંજમાં જવા આકર્ષવાનો તથા કટાક્ષશૌર્યની પ્રશંસા દ્વારા તેનેની રીજવાનો આ પ્રયાસ છે.

(૧૬૦) શિખરિણી

સ્તિત્તવાગી તારા શશિમુખી! કટાક્ષ-યુતિ થકી ખરીદાયો દાસે કમલશરથી સુન્દર અતિ, થડાયું તારું આ ગૃહ નિજ બધાથી જ થડતું, પ્રિયે! સ્વીકારીને કર સહલ તેનો સમય તું.

(૧૬૦) હે શશિવદની! આ નિકુંજને કોણે ગનાવી તે અણે છે? સ્તિપતિ કામહેવે તે ગનાવી છે. તારા સર્વાંગ શૌર્યની તે વાત જ શી, પરંતુ તુ તારા નેત્રકટાક્ષની રંચેક સુન્દરતાના ગહલામાં તે એને (કામહેવને) દામ વરીકે ખરીદી લીધા છે એટલે તારા માટે એ કામ કરે એમાં નવાઇ નથી. એણે સુન્દર કમલ, સરોવરોયુક્ત એ નિકુંજ, આનંદપૂર્વક, પોતાની

(૧૬૧) ઉપનતિ

સ્વગાણથી વેદિત કુંજ હુજો, કંદર્પ યોદ્ધો કલકંઠ નાદે, મને નિમત્તે અહિં યુદ્ધ માટે, સહાય આવે કર આલિ, તું તે.

(૧૬૧) વળી બીજી રીતે વર્ણવે છે. હે સખી કંદર્પ યોદ્ધો પોતાનાં ગાણોથી છવાએલો નિકુંજરૂપી કલ્લો ગનાલીને ઘેરો છે. કોકિલાકુન્ડન રૂપી પોતાના કંઠનાદ વડે મને પોતાના હુર્ગમાં જોલાવી રહ્યો છે. (યુદ્ધ માટે આજ્ઞાન આપી રહ્યો છે. આવા જલવાન યોદ્ધા સાથે એકલા લડવા ભયુ શક્ય નથી) માટે હે સખી, તું આવે મારી સહાયતા માટે સાથે ચાલ અર્થાત્ એ નિકુંજ પરમ કામોદીપક હોઈને, ત્યાં તારા સમાગમ વિના સહી શકાય તેમ નથી.

(૧૬૨) પૃથ્વી

મુખ ધુતિ વડે પ્રિયે! મહત્તું થકી લાલચો, સ્ત્રી વિજન સનમાં ભવન રમ્ય તેમાં રહ્યો, વિચિત્ર કલ કુંજને વિનય વાણી એ એહને, મનાવ મમ સાથે સુંદરી! મહાદત્તાક્ષિ! મુગે.

(૧૬૨) હવે બીજી રીતે વર્ણવે છે. હે પ્રિયે, મહત્તી આગ્રસ ભરેલાં નેત્રથી વિવરણ લાગતી હે સુંદરી, તારા મુખકમલની કાન્તિથી વારંવાર હારી જવાથી લલિતજત યજ ગએલો સ્મર (કામહેવ) નિર્જન પનમાં ઉત્તમ ભવન ગનાલીને રહ્યો છે. આ ગિચાએ આમ અપમાનિત થવાથી હુઃખી છે, માટે કોકિલાની વાણી જેવા વિવિધ પ્રકારના મધુર સ્વસ્થી, સિત્તું હુઃખ મનાવનારા વચનો આલીને, તેને મનાવ. હું પણ તારી સાથે તારી સહાયતામાં સહીશ. (ભાવાર્થ) એ કે તારું શૌર્ય અનુષમ કામહેવથીથી પ્રીય છે. તું કામકોશ ન કરે તે કામહેવ

(૧૬૩) પૃથ્વી

ત્વીકશણ કટાક્ષ ગાણવની હારતાં ભાગીને વસે સ્વશર વેદિત સ્મરનિકુંજ હુજો ભયે. નિતગિનિ! સુમધ્યેનો નિજ વિહાર બધો વર સહાયકર તું મને, અહીં નમાવવા એહને.

(૧૬૩) વળી બીજી રીતે વર્ણવે છે. જેમ કોઈ યોદ્ધો લડતાં લડતાં ભાગી જઈને પોતાના કિલ્લામાં ભરાઈ ગયો હોય તેમ પણ શોધીને, પકડીને. બરાબર સીધો કરવા જોઈએ, નહિતર ફરી કેઈ વાર નહો. તેમ હે નિતગિનિ, હે સુમધ્યમા, (સુન્દર પુષ્ટ ભાગો અને કદિયાળી, તારા નેત્રકટાક્ષરૂપી ગાણોને માર સહન ન થવાથી હારીને ભાગી ગયેલો (કામહેવ) પોતાના ગાણથી (પુષ્પાથી) લીટ ગાએલા કિલ્લામાં (નિકુંજમાં) વસી રહ્યો છે. તેને જોજ સ્થળે (નિકુંજમાં) જઈને અદ્ય સમયમાં પૂરેપૂરે છૂટી લેવા માટે તું નહીં છું. એને માટે વિવિધ પ્રકારનાં દાવવાણું દંડયુક્ત જોવાવાતું છે. આ કથામાં નિજ વિહાર બધો વર દ્રજ સ્તિગાસનો દારા તું મને સહાય કર. (અર્થાત્ નિકુંજમાં પધારી વિવિધ પ્રકારે ક્રીડા કર)

(૧૬૪) અનુષ્ટુપ

આજ હું સ્વાથ સિદ્ધિનું, દાર તારું સું આંસર, કુંચને પામનાં પામું. કામ મંપતિઓ બધી.

(૧૬૪) પ્રિયે આજ તારું કુંચ યુગલ પ્રાપ્ત થતાં કામહેવની સમય સંપત્તિ મને મળી જશે. તારા આંસરમાં આંતરકળમાં પ્રવેશ પામવા એ જ મારો સ્વાર્થ છે ન સિદ્ધ થયો. એના દારા કામહેવ ઉપર નિવન્ય મળવીશ એટલે કામહેવની સમગ્ર મંપતિ મને પ્રાપ્ત થશે. (એને છોતે એની માલમના પણ મળી બધ.) સમય કામસંપત્તિ એટલે પરમ

ચંદ્રાવલી, તનુસુખ પૂર્ણ ચંદ્રમાં,
સૌંદર્ય સિંધુ પર સિંધુ કેટલા,
કે પૂર્વથી પૂર્વ વિલક્ષણા ઘણા,
ક્ષણે ક્ષણે થાય તરંગ તેટલા.

શ્રી પ્રિયાલની રૂપપ્રશંસા દ્વારા તેમને રિઝવવા કહે છે-હું ચંદ્રાવલી, તારા સુખરૂપી પૂર્ણ ચંદ્રનો જે સૌંદર્યસાગર લહેરાઈ રહ્યો છે તેમાં એક નહિ પણ અનેક સૌંદર્યસાગરોનો સંગમ થયેલો છે. જેવાં કે નેત્રના, નાસિકાના અધરાઈના, કષ્ટના અને કંપોલક્રમના સૌંદર્યસાગરો એકત્ર થઈને પૂર્ણ ચંદ્રસમાન તારા સુખચંદ્ર શોભી રહ્યો છે. જેમ સાગરમાં ક્ષણે ક્ષણે તરંગો (મોઝા) ઉત્પન્ન થાય તેમ એકથી એક ચઢિયાતા એવા સૌંદર્યતરંગો તારા સુખમાંથી પ્રગટ થઈ રહ્યા છે. નેત્ર, નાસિકા, અધર કંપોલ એ બધામાં એક-એકથી અધિક સુંદરતા છે જેથી તારી સુંદરતામાં ક્ષણે ક્ષણે નવીનતા પ્રગટ થાય છે. નવીનતામાં જ રમણીયતા છે જે એકજ અચૂર દેહ તો આખ ન શાત પરંતુ અનેક સૌંદર્યસમુદ્રના સંગમરૂપ આ તારા સુખચંદ્ર છે; તેથી જ આમ થાય છે.

(૧૬૬) વશંતતિલકા

તારાં સુનેત્રકમલો મહી જેલનારા,
તારા મહી ભ્રમરથી ચપળા કુશાંગિ,
શોભા મરંદ અરતાં સજિએ ગમે તે
મારા દ્રગ ભ્રમરને પણ પારણા છે.

(૧૬૬) છે કુશાંગી, આ તારાં લેચનરૂપી કમલો, સૌંદર્યરૂપી મરંદને ચારે બાજુએ વેરી રહ્યાં છે. પ્રિયે, એ સૌંદર્યઅમૃત, મારાં નેત્રો, તારાં નયનસૌંદર્યના પાન વિના બૂખાં હતાં તેની બૂખાં લાંગે છે, તુજ કરે છે. તારાં લેચન કેવાં છે? જેમ

નવામાં મરંદ અરના પ્રવચ્ચ લાગે તેમ તારાં નેત્રરૂપી કમલોમાં સ્યમ તારા (ક્રીક્રીઓ) રૂપી ભ્રમરો એ સૌંદર્યમૃતરસનું પાન કરીને તુષિતને અનુભવ કરી રહ્યા છે. (અહીં) પ્રિયાલના નયન સૌંદર્ય અને તેનાં દર્શન માટેની પોતાની આંસુનિક લાલસા વર્ણવી છે. રૂપક અલંકાર છે.)

(૧૬૭) વંશચ છંદ

મદીય નેત્રાંચુજ ખીલવા થકી,
ન ચંદ્ર ભાતુ શયિ કોટિ શૈલ્યથી,
પ્રિયે, ન તારું સુખ વર્ણવી શકે,
ન ત્યાં કવિનાં પણ વેણુ ખલેચનાં.

(૧૬૭) હું ચંદ્રાવલી, આ તારું સુખ ચંદ્ર નથી કમલો મારાં નેત્રરૂપી કમલો ખીલે છે. (ચંદ્રથી કમલો ખીલે નહિ) વળી એ સુખ નથી કેમકે એનામાં કોટિચંદ્રના જેવી શીખળતા છે. ત્યારે એ શું? અહ્યુત શોભાવાળા તારાં સુખનું વર્ણન કરવા કવિઓ અસમર્થ છે.

આશય એ છે કે નેત્રોના પ્રતિલક્ષ વિલક્ષ સૌંદર્યને બેધને લગવાન આગાધ મોહસમુદ્ર મગ્ન થઈ ગયા તેથી કહે છે કે કેવલ નેત્રો મોહકતા આટલી છે તે સમગ્ર સુખના સોદર્ય તો વર્ણન જ કેમ કરી શકાય? મોહકતા અભવગમ્ય જ છે. (અપદ્ધૃતિ, વ્યનિરેક, અલંકાર છે.)

(૧૬૮) માલિની

સુજ પર અધિકો જે કામને થાય રાગ,
સ્વમય શર આપાદિ બધુયે સ્વકીય,
પ્રગટ અહીં કહ્યું તે, સુખ તેથી મદદથી
વહન કમલ તારે, આ ઘણું રમ્ય લાગે.

(૧૬૮) પ્રિયે તારાં સુખરવિંદ કેવં છે?

પ્રગટ અહીં કહ્યું છે. તે આ રહ્યું; તારી ભ્રમરોરૂપી સ્વમય ધનુષ્ય, પાંચણરૂપી પલ્લુ છે ને આ કટાક્ષરૂપી બાણો. (અર્થાત પ્રિયાનું સુખકમલ તેની સમગ્ર શોભાથી મીતમનાં ચિત્તમાં કામનું ઉદ્દીપક બની રહ્યું છે.)

(૧૬૯) ગીતિ

સુજ મનને વશ કરવા,
તુજ તિલક અધિક વિલસે મધુરી હે,
બ્રહ્મદિ ધનુષ્ય સાંધીને,
બાણ મહનનું પ્રયંડ શું બણે....

(૧૬૯) પ્રિયે, બંને ભ્રમરોની મધ્યમાંથી શરૂ થતું લલકારમાં શોભતું આ તારું તિલક તેની લાંબી લીપશિખા જેવી અભૂતિદાર આકૃતિ એ શું છે?

મારા મનને વશ કરવા માટે કામદેવે તારી બંને ભ્રમરોને બેડીને તેનું ધનુષ્ય બનાવી તેના ઉપર બંણે કે પાંતાનું પ્રયંડ બાણ ચઢવ્યું હોય એવું એ તિલક વિરાલ રહ્યું છે. (ઉત્પ્રેક્ષા અલંકાર.)

(૧૭૦) શાહંલિપીકીટન

એ ચંદ્ર ચકોર તો કમલ એટલો ભૂંગચાત્રિ! અને એ તારું સુખ શુદ્ધ રમેલ જલતો, આ નીન નેત્રો બને; સૌંદર્યમૃત લિપ્ય બે નિનિપતના ના થાય ચણુમાં, તેનું તત્ત્વ લઈ શકાય નહિ કે પમાણિ! તો હાલમાં.

હું કમલાશી, તારું સુખ ચંદ્ર છે, કમલ છે, કે સૌંદર્યરૂપ અમૃતનું સરોવર છે તે અત્યારે તો કંઈ પણ નકરી થતું નથી, પરંતુ તે સખી, તારું સુખ જો ચંદ્ર હોય તો મારાં નેત્ર તેનું દર્શન કરનાર ચકોર બને, તારું સુખ જો કમલ હોય તો, મારાં નેત્રો તેનું સ્વપાન કરનાર ભ્રમર બને, તારું સુખ જો નિષ્કપટ અલોકિત રમેલ રસનું સરોવર હોય તો મારાં નેત્રો એમાં ડૂબવાનું...

(લિપ્યસમાન) બની નય કે તેની પલક ન લાગે. (અમૃત પાન કરનાર દેવોના નેત્રોની પલક લાગતી નથી) અર્થાત તારું સુખ અનિમેષ નયને નીરખ્યા કરું.

[અહીં "રમેલ" પર ભકિતરસનું સૂચક છે. કેમકે શ્રી ચંદ્રાવલીનું સુખ દેવાત્મક ભકિતરૂપ છે.] તારું સુખ શું છે તે અત્યારે તો નકરી થતું નથી. એના સંગ્રામમાં આવેલાં મારાં નેત્રો હવે પછી કેવા બની નય છે તે એવા પછી તારું સુખ શું છે તે નકરી થાય. (અંશય અલંકાર છે.)

(૧૭૧) ગીતિ

ખિંદુ મહિન બળે મું શું શું
આ મહનજાતણે છે!
વેણી વિલસે મોહિતક પકિત,
અધિક સુખ ધવલ અથ લસે.

(૧૭૧) પ્રિયે, આ તારી વેણી કેવી સુંદર દેખાય છે! નાણે કામદેવના હાથની રૂંદા લટકતી વેણીને જે માલીની લટોના ચુલ્લા બાંધેલા છે તે જાણે કે હાથીની રૂંદામાંથી ટપકતાં જળખિંદુઓ! (વેણીને આપેલી આ ઉપમા સૂચવે છે કે વેણી એની મોહકતાને લીધે કામોદીપક બની રહી છે.)

(૧૭૨) વશંતતિલકા

લોકોત્તર હૃદય-કોમલતા જ તારી
એ અચુલશિ! નવ પુખ્તનું બાણુ ભારી
કોરે મઠ્ઠ હૃદય. તેહની શાંતિ તારુ
ત્યાં વૈવરાજ મગ જુ' કર તે સુખા શું!

(૧૭૨) હું અચુલશિ, તારા હૃદયની કોમલતા લોકોત્તર છે. (સામાન્ય સ્ત્રી...

શાન્ત કરવા માટે એક જ અસ્તવ્ય સાધન છે. અને તે પ્રિયનું આલિંગન. તેને પ્રાપ્ત કર એટલે તારી આ પીઠા નિવૃત્ત થઈ જશે.

(૧૭૩) ગીતિ

કર ચરણ નખશશીની, આભા મુજને મળી ધરી મમરે
ચંદ્રાવલિ ! પોતાનું નામ સત્ય તું કર નિજનું આને.

(૧૭૩) હે ચંદ્રાવલિ, તારું નામ ચંદ્રાવલિ એટલા માટે છે કે તારા હસ્ત અને ચરણના દશ નખચંદ્ર પ્રકાશી રહ્યા છે. પરંતુ ચંદ્ર તો નીલ આકાશમાં જ શોભે એટલે મારા શ્યામલવસ્તુ સહ આલિંગન દ્વારા, હસ્ત-ચરણના બંધો દ્વારા સ્પર્શ થતાં, એ ચંદ્રન શોભી ઊઠશે, તેની ચંદ્રની ઉપમા સાથેક થશે. અને ત્યારે જ તારું નામ ચંદ્રાવલિ (ચંદ્રની આવલી-પકિત-હાર) એ પણ સાથેક બનશે માટે કુંજમાં આવ.

(૧૭૪) ગીતિ

વદતાં હસી નીરખાતાં, દ્વિત વદન
અંગ મંગ ચંદ્રોએ
ચંદ્રાવલિ ! તું મુજને શીતળ કર
તુજ ખડું નામ કરીને.

(૧૭૪) હે ચંદ્રાવલિ, ચંદ્રમાં શીતળતા, ઉન્નચળતા, મધુસ્તા, આદ્લાદકતા, આદિ ગુણો છે. તારી વાણી, હાસ્ય, અવલોકન, તારા વિદાસો શ્રીમુખનું સૌંદર્ય, અને તારા અંગ-સંગમાં પણ આવા જ ગુણો રહેલા છે. માટે આ બધા વડે તું મને શીતળતા આપ. કેમકે હું તારા વિરહથી તપેલા છું. એક ચંદ્ર આટલી શીતળતા આપે છે તો તું તે ચંદ્રની આવલી છે. ચંદ્રમાં અમૃત છે, તારામાં અમૃતથીયે અધિક મધુસ્તા છે. ચંદ્રમાં ઉન્નચળતા આદ્લાદકતા છે, તેથી અનેક

જાત નિવૃત્ત કરા, શાન્તવતા અપ તા જ. ય ચંદ્રાવલિ ખરી ! !

(૧૭૫) ગીતિ

પ્રથમ સમાગમ ભણી, ધરવા
લેટ યુગલ ફલ ઉરના બે,
આશ્યાં અધિક મનોહર, ઝાંઝર
મંગલ ઘોષ વડે તેો એ.

(૧૭૫) હે પ્રિયે, પ્રથમ સમાગમ વખતે કંઈક લેટ લઇને, વાજતે ગાજતે જવું, એ નિયમાનુસાર તારા ઉરસ્થળમાં છુપાવેલી શ્રીફલન જેડ લઇને, અતિ મનોહર અને મંગલમય નૃપુર નાદ કરતી કરતી આવેલી છે. (તો એની પણ સાથેકતા કર. અર્થાત કુંજમાં એ શ્રીફલ મને લેટ ધર.)

(૧૭૬) અનુપૃષ્ઠ

વિદંબ તજ પદાક્ષિ ! પૂર મારા મનોરથ
આજ સૌ સખીઓ સાથે, પામ આનંદ તું ઘણે

(૧૭૬) હે કમલનયની, હવે વિદંબ ન કામારી ધીરજ પૂરી ગઈ છે) મારા મનોરથ પૂર્ણ કર. આને સખીસમૂહ સહિત, તું અત્યંત આનંદ પ્રાપ્ત કર.

(૧૭૭) ગીતિ

મુખ-સુધાંશુથી ગળતાં,
અમૃતસમ વચન વિચુનાં શ્રવણ કરી
સહુ રીતે અંતરવશ થતાં
પરસ્પર નિરજે વદન મળી.

(૧૭૭) આ પ્રમાણે પ્રિયતમના મુખમાંથી નીકળતાં અમૃતસમ મધર પ્રિય વડે

પ્રિયતમ એ કહી રહ્યા છે એમાં અમારી સંમતિ છે, એવો ભાવ સૂચવતા સૌ સખીઓનો શ્રીમુખ નીરખી રહ્યાં, અને એમના મૂળ ભાવોને પ્રિયતમ અવલોકી રહ્યા. આમ શણવાર, પરસ્પર મુખાવલોકન થઈ રહ્યું છે.

(૧૭૮) પૃથ્વી

પૃથ્વી સહજ ગાઠ એ પ્રભુષ પૂરમાં રૂપતાં,
વર્ધ વ્યય ધૈર્ય ઉત્સુક કુશાંગી વીટી વળ્યાં
સ્વહાથ યદી તેમને વિચુક ગાહુ ગંડધણે,
સ્પૃશ્ય ત ભાગિયાં શું સૌ જલપિમાં પ્રિયાએ દિસે.

(૧૭૮) પૃથ્વી તો એ ગોપીઓનોના હૃદયમાંથી સહજ પ્રેમનો એવો ગાઠ પ્રવાહ પ્રગટ થયો કે તેમની લગ્ન, ધીરજ, ભય, બધું જ એમાં તણાઈ ગયું. અર્થાત ધીરજ પૂરી જતાં ઢાજ લગ્નનો ભય ધોડીને, અત્યંત ઉત્સુકતાથી એ બધા પ્રિયતમની આસપાસ વિટળાઈ વળ્યાં, એટલું જ નહિ પણ પોતાના હસ્તકમલો વડે કોઈ પ્રિયના વિચુકને, કોઈ બંને કપોલોને સ્પર્શવા લાગ્યાં, કોઈ એક હસ્તને સ્પર્શવા લાગ્યાં. ગોપીઓનો અમૂલ્ય એ સાગરમાં રૂળી જતો હોય એમ જણાયું. અર્થાત એવી ભીડ બની કે સાગર જેવા જળસમૂહમાં મોઝાં ઉત્પન્ન થાય એવી રીતે પ્રભુને મળવા માટે, ગોપીસમૂહમાં હિલોળ ચડી. એક એકથી આગળ જઈ પ્રિયતમને સ્પર્શવા બંધે કે સૌ અધીર બની ગયાં.

એ ગાઠ પ્રભુષપૂરમાં એમની લગ્ન, ધીરજ અને ભય જે આઈ ગયાં એ પ્રેમસાગરની ભરતીમાં એ પ્રિયાઓ પોતે પણ બંધે કે મગ્ન થઈ ગયાં. બધું જ ભાન ભૂલી ગયાં.

(૧૭૯) શિખરિણી

(૧૭૯) શિખરિણી

રૂડાં રાધા બહેની ! ચિર સમય એ તત્ત્વ ભજતા.

હે ગધા મહાચરી, ઢાંગા સમય સુધી આમ આદ્યુ; પ્રિયતમ પ્રિયાઓના હસ્તસ્પર્શથી પુલકિત થઈ રહ્યા છે. આપનાં હૃદયનો સતિભાવ આ વિભાવ વડે ઉઠીપન પામ્યો. આપનાં સસભરેલાં આદ્યુ-યુક્ત નેત્રો, એ હૃદયના ભાવોને પ્રગટ કરી રહ્યાં છે. આવી અર્ધવિકસિત સસભરેલી દૃષ્ટિથી પ્રિયતમ પ્રિયાઓનાં મંદમંદ મલકનાં મુખમાં નીરખી રહ્યા છે. બંધે કે સમાપ્તિય બનીને ચિરકાલ પર્યંત પ્રિયાઓમાં તન્મય બની ગયા છે.

(૧૮૦) વસંતવિલક

ગોપી કપોદમય દર્પણમાં સ્વરૂપ,
જેતાં વિશેષ સ્મરતા નિજ શસ-ખેલ;
આનંદ મિન્નુ લહરી સમતે પ્રિયાઓ,
સાથે નિકુંજગૃહમાં પ્રિય આલીંગ્યાં તે.

(૧૮૦) એ સમયે પ્રભુને સારસમળની સ્મૃતિ થઈ આવી. કેમકે પ્રત્યેક ગોપીઓનોના દર્પણમાં કપોદમાં પોતાના (પ્રભુના) સ્વરૂપનું પ્રતિબિંબ પડી રહ્યું છે. પ્રત્યેક ગોપી સાથે કૃણુ એ તો સારસમળની શોભા (આમ સારસલીલાનું) સ્મરણ કરતાં કરતાં પ્રિયતમ, એ બધી આનંદસાગરની લહરીઓ જેવી પ્રિયાઓ સાથે નિકુંજગૃહ પ્રાંત આપ્યા. (પ્રિયતમના હૃદયમાં આનંદનો સાગર પ્રગટ થયો. એ સાગરના તરંગો જેવી ગોપીઓ ચારે બાજુ પ્રસરી રહી છે.

(૧૮૧) ઉપખતિ

પ્રિયાબજે. ગાહુ ધરી વિચિત્ર,
લીલા કરતા કર-પદવેઓ,
સર્વોત્તમ એ પ્રમદા જનોમાં
કંદર્પનો ભાવ ધીરે વધાએ

વડે, વિચિત્ર લીલા-સ્તનસ્પર્શ, સુષુપ્ત-જ્વલન આદિ કરી રહ્યા છે, અન્ય પ્રમદાઓ આ લીલા નીરખી રહ્યાં છે. શ્રી પ્રિયાલ સ્વાધેની આ લીલા દ્વારા અન્ય ગોપીજનોના હૃદયમાં કોઈક નિલક્ષણ પ્રમદાવાવ પ્રભુ પ્રગટ કરી રહ્યા છે. સર્વની લગ્ન કરી કરી ક્રમોન્મત્તા ઉપજવી રહ્યા છે.

(૧૮૨) શિખરિણી

થઈ શોભા તેવે વ્રજવરની તે ના કહી શકું; પરંતુ માડું આ વચન સજની ! એક સુણ તું, ઉપાડી જે ખીરા સ્વપદ કમઘો સ્થાપન કરે, ત્રિલોક-શ્રીગોના, શશિસુગિ નમાવેજ મદને.

(૧૮૨) હે શશિવદની, આ સમયે શ્રીલગ્ની જે શોભા પ્રગટ થઈ તેનું વર્ણન કરવા તો હું સમર્થ નથી. પરંતુ હે સખી, માડું તું એક વચન સાંભળ (એટલા પરથી તને એના ખ્યાલ આવી જશે.) પોતાના બંને ચરણકમલ ઉપાડી-ઉપાડીને પ્રભુ આગળ ધરી રહ્યા છે, તે પગલે પગલે ત્રિભુવનની સ્ત્રીઓના મદનનું મદન કરી રહ્યા છે ! અર્થાત્ એમની આ સમયની મહભરી મલપતી ચાલ ઉપર ત્રિલોકી રમણીઓ ચોહાઈત થઈ બંધ. (ત્રિભુવન ત્રિય કોન હૈ એ નિરખી ધીર ધરાય ?)

સમસ્ત ગોપીજનો પ્રભુની આ લીલા ઉપર સુખી બનતાં, નિકુંજ પ્રદેશ પ્રતિ જઈ રહ્યાં છે.

(૧૮૩) અનુષ્ટુપ

નિકુંજ આંગણે આઘ્યાં, તરુ પદ્મલ બ્યાં ઘણાં, પ્રવેશ્યા પ્રિય તે સાથે, વિરાજ્યા વસ્ત્ર આસને.

સૌ નિકુંજના લતાગૃહ આગળ આઘ્યાં. તેના આંગણમાં અનેક તરુપદ્મલો ઉછાયાં છે.

પ્રિયતમ પ્રવેશ્યા વસ્ત્ર આસને પાતાના ઉત્તરીય વસ્ત્રોનું આસન બનાવ્યું. તેના ઉપર પોતે વિરાજ્યા.

એ સમયે એ આસન જ ઉચિત હતું. વજ્ર-લકતોના ભાવનું જ એ આસન છે. રાસ પંચો-ધ્યાથીમાં વર્ણન છે કે સ્વસ્તીવઃ કુચકુ-કુમાકિને અધિકુલન્નાસન માત્મવચ્ચવે। ગોપીઓએ કુચકુ કુમઘી રંગાલેલાં એવાં પોતાના ઉત્તરીય વસ્ત્રો વડે આભળંધુ પ્રિયતમ માટે આસન બનાવ્યું. પ્રેમની આ જ રીત છે.

(૧૮૪) શિખરિણી

હમનું છે ઇન્દુસુખ, નયનપદ્મો ચલ અતિ, કરન્તા હાંસીને રસ પ્રગટતાં એ વ્રજપતિ, વધા વહાલાલ છે સ્વ-ઉચિત મને દાન કર તું, કહી દ્યો ગોપીએ, સુમુગિ ! પિયુને સુખન કયુ !

(૧૮૪) હે સુમુખી જેમના સુખચંદ્રમાંથી મને હાસ્ય પ્રગટી રહ્યું છે, અને જેમનાં નયન-કમલ ચંચલ બની રહ્યાં છે, (કટાક્ષ કરી રહ્યાં છે, એવા શ્રી વ્રજપતિ, અર્થાત્ રસજુહુ કરતા એવા હાસ્ય-વિનોદ કરતાં કરતાં શ્રી પ્રિયાલને કહે છે કે "પ્રિયે, તને યોગ્ય લાગે તેવું કંઈપણ તું મને આપ." પ્રિયાલએ "દ્યો ત્યારે," કહીને પ્રિયતમને ઉચ્ચ સ્વરસુક્રા સુખન-દાન દર્શ દીધું.

(૧૮૫) ઉપજાતિ

ઉદાર હાસે રદ પકિત ભાસે, તેવેજ ઉદ્દીપિત કામભાવે, તેઓ હસિના મનમાંઘાં ધૈર્ય, કરી શક્યાં નેત્ર વડે ન તે એ.

(૧૮૫) આ દાન મળતાં જ પ્રિયતમ એકદમ

એ જ્ઞાન શ્રાન દન દનના મનમાં પશુ ધારજ રહી નહિ.

(૧૮૬) શિખરિણી

હુએ ધારી ગોપી, કુસુમમય કુંજે પ્રિય ગયા, પ્રિયા સાથે પુષ્પે, નવ કમળની સેજ જટ ત્યાં, રસી રહી પોતે પ્રગટ રસ ભાવે સ્વસરખાં, ઉમંગે તે મંગે સસિક પરમોદાર રમતાં.

(૧૮૬) પ્રિયાલનો હૃત પકડીને, પુષ્પોથી સર્વત્ર છવાયેલી એવી નિકુંજની ભીતર, પોતે પધાર્યાં, બધી પ્રિયાઓ પશુ સાથે છે. પુષ્પો અને નૃતન સુંકોમળ પત્રો વડે તુસ્ત જ સુંદર શસ્થા રસી દીધી. આપના હૃદયમાં રસ ભાવ પ્રગટયો; અને પરમ ઉદાર સરિત્રવાળા પ્રિયતમ, પોતાની સમાન એવાં પ્રિયા સાથે રમણ કરવા લાગ્યાં.

(૧૮૭) હરિગીત છંદ

અધિક પુલકિત કાય, સ્ત્રીહારે પ્રગટ રસધારણાં રમર સદન આકમણે થતાં જે શ્વાસથી સુન્દર ઘણા, અતિવેગ હાસ્ય થરી થતા ઉરસ્નેહ ભાવે લાજતાં, રસભર સદર્શ, લલવ, ચંચલ-લોચનાં સહુ ગેલતા.

(૧૮૭) રમણસમયની શુગલ સ્વરૂપની સ્થિતિ વણુ છે; પ્રિયાના અંગસંગથી પ્રિયતમ ઘણા જ રોમાંચિત થઈ રહ્યા છે, મદન-સદન ઉપર આક્રમણ કરવાથી શ્વાસોશ્વાસની ગતિ વધી છે. રસભરેલી દષ્ટિથી નેહી રહ્યા છે. વળી પ્રિયાલના સુખમાંથી (સ્ત્રીહાર) (સ્ત્રીસકાર) પ્રગટ થઈ રહ્યા છે તે બળુ કે રસની ધારા ચાલી રહી છે. પ્રિયાલ એકદમ હસી પડે છે. પછી એવો કોઈ ભાવ મનમાં પ્રગટ થાય છે કે જેના પ્રભાવથી વિરોધ લલિતરત થઈ બંધ છે. એ લલનને લીધે એમનાં

(૧૮૮) પુષ્પતામા

પિક સગ કલ કુજતાં કૃશાંગી, કરી ઘનચુંબન દંત દંશા રેના, સરસ વિવિધ બંધના વિલાસે, શ્રમજલચુકન વ્રજેશને રમઝો.

(૧૮૮) અને પ્રિયાલ પ્રિયતમને સુખ આપી રહ્યા છે. શ્રીવ્રજેશને ન્યારે ગાઢ ચુંબન કરતાં કરતાં એમના કપોલ પર દંતક્ષત કરી દે છે ત્યારે પ્રિયાલ કોહિલના જેવી કિલકારી કરી બેઠો છે. વળી એ કૃશાંગી પ્રિયા વિવિધ પ્રકારનાં છુપાહાયક રતિ આસનો દ્વારા વિલાસ કરવાથી પ્રમિત થાય છે, શ્રીઅંગ ઉપર શ્રમજલગળિંદુઓ ચોલી બેઠો છે.

(૧૮૯) વંશસ્થ

પ્રિયાંગસંગે રસ આ મને મદ્યો, કેવો મર્યો તે પિયુને બહુવા નિતાંગિની ચલ કરે શુ ? તે કાંમ, થઈ જ ભાવથી પૂર્ણ એકતા.

(૧૮૯) હવે વિપરીત રમણની લીલાને વર્ણવે છે. પ્રિયાલ બળુ કે નિચારે છે કે ઉપસ્થિત પ્રિયતમના અંગસંગ વડે મને આવો રસ પ્રાપ્ત થયો હશે, એ અનુભવ મેળવવા માટે પ્રવૃત્ત થયાં હોય તેમ, એ નિતાંગિની, ઉપસ્થિતિ થઈને મનથી કૃષ્ણમય બની ગયાં. વિપરીત રમણદ્વારા રસાનુભવ કરવા લાગ્યાં લાંબા સમય સુધી આમ ચાલ્યું.

(૧૯૦) અનુષ્ટુપ

કેમ કૃત્રિમ તે ભાવ, થાય સ્થિર વિલાસિનિ અંતમાં ભજતાં ભાવ, લાજે મલકતાં બની.

(૧૯૦) પરંતુ, હે સખી, આવો કૃત્રિમભાવ

(૧૯૧)

ગીતિ

કંઈક મીઠેલા નયન વળી,
અધર રંતાશરહિત રોમાંચિત બે,
શ્રમકણ્ય સુંદર સુખને,
પ્રિયે પ્રિયાના ધન્યવાન વર એ.

(૧૯૧) અને પ્રિયતમ, રોમાંચિત ચર્ધન,
રસપાન કરી રહ્યા છે. શેતું? અર્ધાંશિઆયેલા એવાં
પ્રિયાલનાં મેગેતું, ચુસાર્ધને જેની લાલિયા જતી
રહી છે એવા અધરોઠનું. પ્રસ્વેદ ગિંદુઓથી
ચુકત સધન કપોલોતું રસપાન કરીને પ્રિયતમ
છવનની ધન્યતા અનુભવી રહ્યા છે. (રતિની આ
મધ્યાવસ્થા છે.)

(૧૯૨)

ગીતિ

રતિરમ્ જલધિ વિલાસો
નવતરંગ મહી! પ્રિયા વટે પરિયા,
પાર ન પાર્યા એ પણ,
પોતે પુરુષ કૃષ્ણચંદ્ર વળી આ.

(૧૯૨) ભાં રતિરસને મહાસાગર ઊલટ્યો.
નૂતન નૂતન વિલાસો રૂપી સાગરના તરંગોમાં
શ્રીપ્રિયાલને મગ્ન બનાવી દીધા તે એટલું સુધી
કે તેઓ તેમને પાર ન પારી શક્યા. જેમ સમુદ્રનાં
મોલમાં ફસાએલી વ્યક્તિને કિનારે આવવું
સુરકેલઈએ છે અર્થાત શ્રીપ્રિયાલએ પ્રિય-
તમને રતિરસવિલાસોને નૂતન નૂતન પ્રકારે એવાં
આસ્વાદ લેવડાવ્યાં કે પ્રિયતમ તેમાં અત્યંત હુબ્ધ
થઈ ગયા.

પૂર્ણિમાના શ્વન ચંદ્રથી આગરમાં ભરતી
ચંદ્ર છે; તેમ આદી શ્યામસુંદર કૃષ્ણચંદ્રથી
પ્રિયાલના હૃદયરસગાગરમાં ભરતી થઈ. (શૃંગાર
રસને વર્ણવ્યામાં છે) સ્વયંપૂર્ણ સ્વરૂપ છે.

વિલાસતરંગોમાં મગ્ન બનાવી દીધા. માટે
પ્રિયાલ પણ એવાં જ પૂર્ણશૃંગાર રસાત્મક સ્વરૂપ
છે. તેથી જ શ્રીકૃષ્ણ સ્વયંપૂર્ણ છતાં એમના
વિલાસોને પાર ન પારી શક્યા. પાર ન
પાર્યા. અર્થાત ચિરકાલપર્યંત એ વિલાસ-
તરંગોમાં જ રૂપ્યા ક્યું. સત્વર એમાંથી બહાર
ન નીકળી શક્યા. રતિચતુર પ્રિયાલએ એમને
એવું સ્મારવાદ દાન કર્યાં જ ક્યું? ?

(૧૯૩)

શિખરિણી

અહીં ના હે આલિ, સ્વદગમિપતું અંતર પણ,
પ્રિયાનું જોતાં એ સુગ વળી મળ્યે એ મલાવજ,
પ્રિયા બહાલાને તો હૃદય ચિર આલિંગન કરી,
સુખતરો પામેલાં અધિક ભજતા ધ્યાનની દશા.

(૧૯૩) હે પાળી, પ્રિયતમ એવા રસહુબ્ધ બની
ત્રયા કે પ્રિયાલનું સુખ નીરખવામાં પોતાના
નંદોની પલક લાગવા જેટલું અંતર પણ મહી
શક્યા નથી. વળી એમને આલિંગવામાં પ્રિયાલના
અંગ ઉપરનું ચંદન લેવન પણ એમને અંતરણ્ય
રૂપ લાગે છે અર્થાત સતત સુખાવલોકન આલિ-
ંગનાર કરી રહ્યા છે અને શ્રીપ્રિયાલ પણ હૃદય-
ગન પ્રાણેશને ચિરસમય આલિંગીને પ્રિયતમ
પાસેથી જે સ્વાત્વ મેળવવાનું હતું તે મેળવીને
પરમ તૃપ્તિ પામીને બલ્લે કે અમાધિ અસ્થાને
પ્રાપ્ત થયાં છે. (આ સુરનાન વર્ણન)

(૧૯૪)

અનુરુપ

વેળી શુશ્વન આરંભી, ચરણે અળના સુધી,
એટલે શૃંગાર પાસેરાવ્યા, સ્વપ્રિયાના કથ્યા થઈ.

(૧૯૪) પછી તે પ્રિયાલએ જ્યેષ્ઠ કે સુરજ
સભ્યે અકોરીમાં પોતાના બધા શૃંગાર અસ્ત-
વસ્ત થઈ ગયા છે અને એમ કરનાર પ્રિય-

શૃંગાર આપ આપને હાથે જ ફરી ધરાવો" અને
આપીન બનેલા પ્રિયતમે વેણી ગૃથવાથી શરૂ
કરી, છેક ચરણમાં અળતો લગાવવા સુધીના
બધા જ શૃંગાર એમને ધરાવી દીધા.

(૧૯૫)

કર્દવંશા

પછી પિયુએ નળતારલા વિધે,
સુખેન્દુને દર્પણ જેમ દાખવ્યું,
ચંદ્રાવલિ વેધ સુખે નિહાળતાં,
લગઈ કંઈ હાસ્યથી પ્રેષ વકત્રને.

(૧૯૫) પછી પ્રાણેશ પોતાની અંશુલિના
નખરૂપી દર્પણમાં, પ્રિયાલનું સુખ દેખાડ્યું.
પ્રિયાલએ પોતાના વસ્તુનું પ્રતિબિંબ જોયું. એ
જેતાં પ્રિયાલને કેંક લાગત આવી. નેત્રો હસી
રહ્યાં, એવી લગજ અને હસતી દૃષ્ટિથી પ્રિયતમના
સુખને પોતે નીરખી રહ્યાં. (બાણે કે પોતાના
સુખ સાથે પ્રિયાના સુખની સરખામણી ન
કરતાં હોય !)

(૧૯૬)

ઉપવનિ

કેમાંય ધારી અહુ હર્ષતા એ,
કંપાલ આનંદ મુષા-નિધિને,
કચ ગ્રહીને વન સુખતા એ,
સીત્તર ધારે નવ આશયે તે.

(૧૯૬) જ્યારે આમ પરસ્પર સુખદર્શન
લીલા થઈ રહી છે ત્યારે અતિ હર્ષથી પ્રિયાલના
કંપાલ ઉપર રોમાંચ થઈ આવ્યાં. એ કંપાલ
આનંદામૃતના નિધિ સમા બની ગયા અને એ
અમૃત-પાન કરવા પ્રિયતમ એમને કૌશ પાશ
પકડીને, કંપોલને ગાદ રીતે ચુમવા લાગ્યા. ત્યારે
પ્રિયાલના સુખમાંથી ગીકાર નીકળવા લાગ્યો.
પ્રિયાના સુખમાંથી અંગન સ્વર અને પ્રિયાલના

(૧૯૭)

ગીતિ

વિવિધ કુસુમથી સંકુલ પુલ પર,
સુકુટ અતિ લલિત નમતો,
જમણી ભૂકુટિ પર કઈ રમતાં,
અહુ સુત્રિન બની પ્રિયને તો.

(૧૯૭) પછી પ્રિયાલએ શ્રીલને સુકુટ
ધરાવી દીધો એના ઉપર ફૂલના તોરા લટકતા
હતા. વાંકડિયા કેશ ઉપર, ચહેલ જમણી
બરમર તરફ નમતો એ સુકુટ ધરાવ્યો.

(૧૯૮)

ગીતિ

મુગમદ તિલક પુલકમય લક્ષાટમાં
પિયુના રચતાં મધ્યે
નિજ મોતીમય સુંદર કરતાં ગિંદુ
પ્રિયા કૃશાંભી એ.

(૧૯૮) વળી, પ્રિયાના હસ્તાકર્ષણે એમના
લલાટ પર રોમાંચ થયાં છે એવા પ્રિયાના લલાટ
ઉપર, એ કૃશાંભીએ કસ્તુરીનું તિલક કીધું અને
તેની મધ્યમાં પોતાના મોતીની ગિન્દી લગાવી દીધી.

(૧૯૯)

વસંતલિલકા

કપૂરે કુંકુમ કુરંગમદે મળેલાં,
આરંભી સુન્દર કંપાલ થઈ પ્રભુના,
પાદાંબુએ સુધી રૂડું સુખચંદ્ર જોતાં,
તે લેવતાં સખી ! વિચિત્ર સુચન્દને હાં...

(૧૯૯) પછી તે પ્રિયાલ પ્રિયાના સુંદર વદન-
ચંદ્રને નિરખતાં તથા છેને પ્રિયાના કપાળથી
માંડીને ચરણારવિંદ સુધી ચંદન લેવન કરતાં તથા
છે. એ ચંદન કેવું છે? જેમાં કપૂર (બાસ) કે
અન્ય અન્ય નાનકાં નાનકાં નાનકાં નાનકાં

(૨૦૦) અનુક્રુપ

કુચકુકુમના પકે લેપેલા ઉત્તરીયનું નિતાંબે બાંધતાં શ્રીને, શુભાંગી વસ્ત્ર શોભીતું.

(૨૦૦) પછી એ કૃશાંગી, પોતાના કુચકુકુમથી રંગાએલું નિત્ર ઉત્તરીય વસ્ત્ર, પ્રિયતમના નિતાંબ ઉપર (પીતાંબરની જેમ) પહેરાવે છે. સાથે વિવિધ પ્રકારે મનોરંજન વિનાહ કરતાં વ્યય છે.

(૨૦૧) અનુક્રુપ

પછી વિચિત્ર ચરણે, કુરંગમદ કુકુમો લગાવે ચંદ્રવદની અંજરો રમ્ય યુગ્મ ન્યાં.

(૨૦૧) અને પ્રિયનાં નૃપુરથી શોભતાં ગાનને ચરણોમાં ચન્દ્રસુગીએ કેસર કરતુરી વડે ચિત્ર પંજી ચીતરી દીધાં.

(૨૦૨) ઉપવનનિ

સ્વકાંડલીને ઉરમાં પિણુના,
ધરી સુદારો વળી કુકુમોએ
વિચિત્રમાઠા પજુ પુષ્પ ફેરી,
કંઠે ધરે કુકુમહરિતા એ.

(૨૦૨) પછી, કુકુમોથી શોભતા યુગ્મવાળાં પ્રિયાલએ પોતાના વક્ષસ્થલમાં ધરવાનું આમૃતપંજુ પ્રિયતમના ઉર ઉપર ધરાવી દીધું. પોતાના હાર તેમને ધરાવ્યા, અને પોતાના કુચકુકુમથી રંગાએલી પુષ્પમાળા પજુ પ્રિયના શ્રીકંઠમાં પહેરાવી દીધી.

(૨૦૩) ઉપવનનિ

શ્રીકૃષ્ણના કણું વિષે શુભાંગી,
પુષ્પો ધરે, એ સખી કલ્પિતકાર,
ગંડસ્થલે સુન્દર સહમ સહમ
રચી ઘણી અદ્ભુત ચિત્રરેખા.

(૨૦૩) હે સખી, એ સુભગ અંગવાળાં પ્રિયાએ, શ્રીકૃષ્ણના કણું વિષે કલ્પિતકાર પુષ્પો ધરાવ્યાં અને ગાનને કપોલો ઉપર ઘારીક રેખા-આવાણું અતિ અદ્ભુત ચિત્ર પજુ બનાવ્યું. (કપોલમંડળ.)

(૨૦૪) અનુક્રુપ

પ્રિયનાસાપુટે રમ્ય, સ્વનાસાપુટભૂષણ,
ધયું પોતે ધરે તેમ, તેમનું પ્રમદોષ્ટભા.

(૨૦૪) એ પ્રમદાએ પોતાનું સુંદર નકવેસર પ્રિયતમની નાસિકામાં પહેરાવ્યું અને પ્રિયનું નકવેસર પોતે પહેરી લીધું.

(વસ્ત્રાભૂષણોને પરસ્પર પલટો, એક આનંદ-જનક પ્રકાર છે. એને લીલા-હાવભાવ કહે છે. “એક વૃંદાવન માંહે નિકુન્જના મહેલમાં મારા રાજ” એ પદમાં દયારામભાઇએ આ પ્રકારનું ઉદ્કૃષ્ટ વર્ણન કર્યું છે અને “ચારે, નેક બચી હો તો બનઉ” એ પદમાં સ્વદાસલએ કહ્યું છે.)

(૨૦૫) શિખરિણી

નિદાગીને તેવું રૂપ શયિસુગી હર્ષિત બની
અધીરાં શું ભેટી, પ્રિયસુગ યુગ્મનાં પ્રિય સખી,
ન વલ્યું વા કેવું સુગ અનુભવ્યું અંતર દલે
પ્રિયા એને નાથે પ્રભુચલર પૂરા સુનયને.

(૨૦૫) હે ચંદ્રવદની, પછી તો પ્રિયનું આલું રૂપ નીરખીને, અતિ હર્ષિત થયેલાં પ્રિયાલ અધીરાં બનીને પ્રિયને ભેટી પડ્યાં. સુગ યુગ્મવા લાગ્યાં. હે સખી, એ સમયે પ્રિયાલના હૃદયને કેવું સુગ થયું તે હું બલ્લી નથી, વર્ણવી શકતી નથી અર્થાત્ અનિર્વચનીય સુગ પ્રાપ્ત થયું. પોતાના સુંદર નયનોમાં પ્રિયાલ એમને પૂરેપૂરા નાથી રહ્યાં છે.

(૨૦૬) અનુક્રુપ

સ્વવિલાસ લવે હારે, ન્યાં કંઠપં, વન્નંગના,
સર્વ સંગે રમે શ્રીમાન રસપ્રદ મજ્જેશ આ.

(૨૦૬) આજ પ્રમાણે શ્રીમાન મજ્જેશ પ્રભુએ સમગ્ર મજ્જ સુંદરીઓને પરમ સુખનું દાન કર્યું. વન્નંગનાઓ કેવાં છે? પોતાના એક નાનકડા વિલાસ-હાવભાવ-એટા માત્રથી સાક્ષાત્ કામદેવને પણ હરાવી શકે એવાં છે. અર્થાત્ એમને પ્રત્યેક વિલાસ પરમ સુંદર છે-ક્રમોદીપક અને મનોહર છે.

(૨૦૭) શાહૂલવિકીલિત

આ લોકત્રયમાં કંઈન અમને, તો છે અપેક્ષા, સખી!
નિત્યે ચિંતન એહુંછે ફરી ફરી, પચાક્ષી! એ ભાગણી
આવું સુંદર નંદનંદન સદા, સર્વસ્વદાને પીરાં,
ગોપી સંગ રમેજ સંગવર તે અરમહુતેકુન્જમાં.

(૨૦૭) હવે લીલાવર્ણન કરનાર સખી પોતાની સખીને સંજોષીને કહે છે કે-હે સુભગા, પચાક્ષી, આપણને તો ત્રણે લોકમાં આથી પર બીન્દ કશાની પણ અપેક્ષા નથી. નિત્ય વારંવાર એ જ વિનંતી કરીએ કે કુન્જલવનમાં સુંદર નંદાતમજ આ પ્રિયાલ સાથે નિરંતર આમ રમણ

કરા કે જે કમલનયની પ્રિયાલ પ્રિયતમને પોતાનું સર્વસ્વ અર્પણ કરવા સમર્થ છે.

(૨૦૮) અનુક્રુપ

રાધા ચંદ્રાવલી ગોપીદાસીએ કહ્યું દિવ્ય આ,
સંપૂર્ણ કુન્જમાં થાય શંગારસમંકન.

(૨૦૮) નિકુન્જમાં (શય્યાની રચના કરતાં કરતાં) શ્રી રાધાકાલની અને શ્રીચંદ્રાવલિલની સખીઓએ વર્ણવેલી શૃંગાર રસના શબ્દગાર રૂપ એવી આ અદ્ભુત લીલા પૂર્ણ થઈ.

(૨૦૯) અનુક્રુપ

ઇતિ શ્રીકૃષ્ણનું તેમ પ્રિયાઓનું જ વાંછિત,
સ્વસ્વ દાન અન્યોન્ય સ્વાશયે વિકૃલે કયું.

(૨૦૯) આ પ્રમાણે શ્રીમદ્ મજ્જેશ અને તેમની પ્રિયાઓનું ઇચ્છેલું પરસ્પર સર્વસ્વ દાન શ્રી વિકૃલેશ પ્રભુએ સ્વઅર્થે તથા સ્વજનોને અર્થે પ્રગટ કર્યું.

શ્રી ગોપીજનવદલભમાં જેમનું ચિત્ર
એકાંત છે એવા શ્રી વિકૃલ ત્રીક્ષિતે સ્થેલી
દાનલીલા સંપૂર્ણ.

